सदयवत्स सावलिगा प्रेम-कथा-सम्बन्धी एक अज्ञात रचना

—श्री अगरचन्द नाहटा

सदयवत्स और सावलिगा की प्रेम-कथा काफी प्राचीन है और उसके अनेक रूपान्तर प्राप्त होते हैं। १६ वर्ष पूर्व इस कथा और उसके रूपान्तरों के सम्बन्ध मे मेरा एक विस्तृत लेख 'राजस्थान भारती' अप्रेल १६५० के अङ्क में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद भी खोज चालू ही रही और उस लेख में सूचित रूपान्तरो के अतिरिक्त और भी कई रचनाएं प्राप्त हो रही हैं। उन सबकी जानकारी तो अन्य किसी लेख मे दी जायगी। प्रस्तुत लेख में हाल ही मे प्राप्त एक अज्ञात पद्यवद्ध कथा का सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। गद्य-पद्य-मिश्रित और केवल दोहो वाले रूपान्तर तो कई प्रकार के प्राप्त हो चुके हैं। पर पद्य काव्य के रूप में जो रचनाएँ प्राप्त हुई थी, उन्हें मैंने सादुल राजस्थानी रिसर्च इस्टीटयूट से प्रकाशित 'सदय-वत्स वीर प्रबन्ध' जो इस कथा के सम्बन्ध मे प्राचीन राजस्थानी व गुजराती का सबसे पहला काव्य है और उसे डा० मजुलाल मजूमदार के संपादन मे प्रकाशित किया जा चुका है, अर्थात् उस ग्रन्थ के परिशिष्ट में 'सदयवत्स सावलिगा पाणिग्रहण चौपाई' तथा तथा जैन मुनि केशव-रचित सदयवत्स साव-लिगा चौपाई भी प्रकाशित कर दी गई हैं। कुछ महीने हुए, अहमदाबाद जाने पर मुनि पुण्य विजय जी के संग्रह के गुटकों को देखने का अवसर मिला तो उनमें से एक गुटके मे ४२८ पद्यो की एक और अज्ञात रचना देखने को मिली। उसी का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

इस रचना के अन्त में रचना-काल-सूचक एक दोहा इस प्रकार मिलता है—

> सवत आठ सत्ताणुंई,
> माह सुद पांचमसान।
> वात सपूरण तिहां करी,
> सघकवित समान॥

इस पद्य में ८६७ संवत् का उल्लेख किया है, पर वह संभव नही। १८६५ भी नही हो सकता क्योकि प्राप्त प्रति इससे पहले की लिखी है। रचना की भाषा को देखते हुए यह रचना अधिक प्राचीन भी नही लगती। प्रति १८ सौ के लगभग की लिखी हुई है। अत: प्रस्तुत रचना संवत् १७६७ की हो सकती है। पालन-पुर राधनपुर आदि गुजरात के स्थानो मे इस प्रति मे लिखित रचनाओं का लेखन, समय-समय पर होता रहा है। गुटका की यह सग्रह प्रति किसी जैन यति की लिखी हुई है। इसमें जैन और जैनेतर कवियो की लिखी हुई कई रचनाएँ हैं। जिनमे से प्रेम-गीता सवत् १७६६ की जैनेतर कवि की रचना है। इसके अन्त मे लेखन संवत् १८२५ वैसाख सुदी १५ शनिवार का उल्लेख है। इसके बाद 'नरसी मेहता का माहेरा' लिखा हुआ है। उसमे लेखन-स्थान राधनपुर बताया है। जबकि 'सदयवत्स की बात पालनपुर मे लिखी गई हैं। इसमें दोहा, कवित्त, चन्द्रायणा, गाथा आदि छन्दो का प्रयोग किया गया है। वैसे सबसे अधिक दोहा व चन्द्रायणा ही हैं। पर रचना के अन्त मे 'दूहा कवित्त' का उल्लेख किया गया है। प्राप्त रचना के आदि और अन्त के कुछ पद्य नीचे दिये जा रहे हैं। प्रति के बीच के १८ पद्यो मे यह रचना लिखी गई हैं। इसमें कई दोहे आदि पद्य तो अन्य रचनाओ मे

भी प्राप्त होते हैं। निर्माता ने अपना नामोल्लेख नहीं किया। मालूम होता है किसी ने कुछ पुराने पद्यों में अपने पद्यों को जोड़ कर इसे यह रूप दे दिया है।

प्रारम्भ में कवित्त लिखा हुआ था पर दोहों के [illegible] सम्बन्धी प्रसिद्ध गाथा लिख दी गई है।

आदि अथ सदयवछनी वात लिख्यते ।

गाहा—

+ प्राणदपुर नामे नयर सालिवाहन राय नरिंद वरं ।
सुदेवच्छराय नन्दन, सावलिंगा मन्त्री कुमार ॥

कवित्त—

सात लाख तंडग, पवन पट पोहगा पदर ।
पाच लाख पायक, सुभट एक एकागदर ॥
दल चलता अणपार, धरा धम धम्मकारह ।
सालिवाहन समचटे, भोमन झल्ले भारह ॥
गज गुज रथ गोतम हुवे, आप नाम अमर कीरो ।
उथली धरा उजेण थट, चढ़े राय वीकम दीढ ॥
कुंकण दमण कनुंज, काछ पंचाल नरेंनर ।
स्वेत बन्ध रामेस, सोरठ नव लाखेसर ॥
झाड खड मेवाड, गंड गुजर पीरागर ।
पागट महिपल मध, सेत आयो पारायर ॥
सुरधरा देस आबू अटल, उप्पन पानईसर पने ।
एतली सालवाहन पोहल, तेम सुरावन भोगवे ॥२॥
कस्तुरी कपूर, अग चन्दन परगाई ।
पानफूल तबोल, हाटपाटण सुनाई ॥
वर्ण एता पामणा, दानदेण भागण हार ।
सोना उल संघरा, ताम धान सोपारा ।
पहनोहल नरेस परठाण पत, गजी सो उजलधरा ।
सो लाख द्रव्य चलने, सालवाहन एकटागर ॥३॥

+हमारे संग्रह की एक प्राचीन प्रति में यह पंक्ति इस प्रकार है—
कुंदण विच्य नगर, पट्ठोपान दशनिहाद लोक ।

दूहा—

अत हिम्मत सुरत अधिक, मंचरण हारा सच ।
साल वाहनरे पुत्र वडो कुंवर सदैव ॥४॥

× × × ×

अन्त—

सदेवच्छ घरे पधारिया, प्रीत लगी अरणपार ।
सदेवच्छ सावलंगातणों अविचल जोड़ी अवार ॥२३॥
सवत आठ सताणु की माहासुद पांचम मान ।
वात सम्पूरण तिहां करी, संघकवित समान ॥२४॥

अथ चार पोहरना दूहा—

पहलो पोहर रैण को, दिवड़ो झाकम झोल ।
घण कंटालो केवडो, पिउचम्पारो छोड ॥२५॥
बीजो पोहर रैंण को मिलिया गुझा गुझ ।
घण मड पीउ पसरे, विहूं तडो वड झूझ ॥२६॥
तीजो पोहर रैण को, मिलियो घणोजु सनेह ।
घण आपाडी बिजली पिउ आपाडो मेह ॥२७॥
चौथो पोहर रेण को, मिलिया बहुलै आस ।
धण संभाले कंचुओ, पिउ संभाले पाग ॥२८॥

इति सदे वच्छ सावलिंगा वात, दूहे कवित्त सम्पूरण । लिखितं पाटहणपुरे ।

सदयवत्स सावलिंगा सम्बन्धी सबसे बडी रचना पाटण के जैन-भण्डार में प्राप्त है। जैन कवि रंग-विजय ने सदयवत्स सावलिंगा रास के नाम से इसकी रचना की है। इसकी १०८ पात्रों की प्रति संवत् १८५६ की लिखी हुई है।

इस कथा की कई सचित्र प्रतियां भी प्राप्त हैं। अन्य प्रदेशो में भी इस कथा का काफी प्रचार रहा है। अतः एक शोध-प्रबन्ध लिखने की तैयारी जयपुर के श्री शंभुसिंह मनोहर कर रहे हैं।

सौराष्ट्र के पालीताणा सहर के सदयवत्स और सावलिंगा के नाम की एक बावड़ी होने का उल्लेख कर्नल जेम्स टॉड ने अपने 'पश्चिम भारत की यात्रा' नामक ग्रन्थ मे किया है। यह ग्रन्थ उन्होने अब से १३० वर्ष पूर्व लन्दन मे लिखा था। उसका हिन्दी अनुवाद श्री गोपालनारायण बोहरा ने बडे परिश्रम से

किया है और वह अभी-अभी राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित हुआ है। इसके पृ० ३०६ से ३१२ में पालीताणा के स्मारक सावलिंगा की कथा का आवश्यक अंश छपा है, उसे पाठकों की जानकारी के लिए आगे दिया जा रहा है। इसमें कहानी का पीछे का अंश नहीं दिया गया।

पालीताने की बावडी सदयवत्स सावलिंगा की प्रेम-कथा

पालीताना शहर के अन्दर की ओर एक प्राचीन स्मारक है। यह एक सार्वजनिक बावडी या जलाशय है जो परम्परागत कथाओं के अनुसार सुप्रसिद्ध सदयवत्स और सावलिंगा के प्रेमी-युगल के नाम से विख्यात है, जिनकी प्रेम-गाथा हिन्दुओं की अनेक प्रणयकथाओं में से एक है। इसकी सम्पुष्टि में यदि कोई शिलालेख मिल जाता तो हम इस बावडी के निर्माण को कम से कम १८ शताब्दी पूर्व का अवश्य मान लेते। सदयवत्स तक्षक शालिवाहन का पुत्र था जिसने हिन्दुस्तान के सर्वोच्च सम्राट् (विक्रम) को पराजित किया था और जिसका सतत भी ईसवीय सन् से ५६ वर्ष पूर्व का है, जो अब भी उत्तरी भारत में सुप्रचलित है। किसी समय यह सम्वत् सम्पूर्ण भारत वर्ष में प्रचलित था, बाद में टाक अथवा तक्षक शासक ने विक्रम पर आक्रमण करके नर्मदा के दक्षिण भाग में से उसके शासन को उखाड फेंका, अथवा सम्वत् शक नाम से प्रचलित किया जो उनके सीथिक अथवा गेटिक उद्गम का एक और अन्यतम प्रमाण है। यदि हम पुरानी गाथाओं पर विश्वास करें तो यह मानना होगा कि इन दोनों शासकों के युद्ध का परिणाम एक समझौते के रूप में हुआ। जिसके अनुसार शालिवाहन भारत के प्रायद्वीपीय भाग का स्वामी हो गया और महती विभाजन-रेखा बनी हुई नर्मदा का समस्त उत्तरी भाग विक्रम के अधिकार में रहा। आज भी पूर्व भाग अर्थात् दक्षिणी भारत में शक का प्रयोग होता है, और उत्तर भाग अर्थात् [illegible] (विक्रम) संवत् प्रचलित है। परन्तु [illegible] की प्राचीन गाथा पर आते हैं।

सदयवत्स की आविका सावलिंगा [illegible] रूप और गुणों के कारण [illegible] हुई थी। वह जैन-धर्म का पालन करती थी। और इसके पिता सदयवत्स को उस पर बहुत गर्व एवं [illegible] था। सदयवत्स उस समय का बहुत [illegible] था। यह गोदावरी के तट पर शालिवाहन की राजधानी पैठान नामक नगर में रहता था। भारत के [illegible], नर्मदा के सुदूर दक्षिणी भाग में स्थित पार-कर (Parkur) नामक नगर के निवासी एक [illegible] धनी और धर्मी महाजन ने सावलिंगा के माता-पिता से उसकी मांग की थी। और उसी के साथ उसकी सगाई हुई थी। उसका भावी पति अपनी मांग को लेने के लिए पैठान आया था। परन्तु, [illegible] सावलिंगा का हृदय पहले उस में नहीं था। उसने शालिवाहन के पुत्र को देख लिया था। वह उसकी प्रेमिका थी, और वह उसका प्रेमी, उस युवक से [illegible] की अपेक्षा वह मृत्यु श्रेयस्कर समझती थी और पारकर के [illegible] को [illegible] करना चाहती थी। अभी उनका प्रेम पवित्र था। [illegible] के मंदिर में एक ही [illegible] के पास विद्याध्ययन करने वाले दोनों मित्रों के हृदयों में प्रेम का बीज बचपन से ही पनप रहा था। और विवाह का [illegible] जाता उससे पहले [illegible] नहीं हुआ था कि [illegible] हुआ था। जिसने एक ऐसा पाठ पढ़ा दिया था कि जिस पर [illegible] हुआ था परन्तु [illegible] द्वारा [illegible] स्थान के बल पर भी [illegible] था। [illegible] मानने का ही नाम। [illegible] के [illegible] का निर्णय [illegible] के सामने ही [illegible] दिया गया, [illegible] इन दोनों के [illegible]

[illegible] की साक्षी दी कि वे एक दूसरे के लिए ही जीवित रहेंगे।

यह निश्चय हुआ कि विवाह के दूसरे दिन प्रातः काल ही पारकर का महाजन अपनी नववधू को लेकर विदा होगा और मरुस्थल के मार्ग मे पड़ने वाले सभी और देशस्थ धार्मिक मदिरो के दर्शन करता हुआ जायगा। सार्वलिगा ने किसी प्रकार इस कार्य-क्रम की सूचना अपने प्रेमी को पहुँचा दी और अतिम मिलन के लिए देवी का स्थान निश्चित किया जहाँ उन्होंने प्रेम-प्रतिज्ञा की थी। सदयवत्स देवी के मदिर में जा सुता और प्रेमपगी प्रेमिका भी वहाँ जा पहुँची। परन्तु देवी को एक स्त्री की यह कर्तव्यच्युति सहन न हुई क्योंकि वह अन्य पुरुष की परिणीता हो चुकी थी, अतः उसने राजकुमार को गहरी निद्रा में मग्न करके उस योजना को विफल कर दिया—ऐसी निद्रा मे सार्वलिगा की सभी प्रणय-चेष्टाएँ उसे जगाने में असफल रहीं। समय के पर लग गए थे। अन्त मे उसे एक ही तरकीब तुरन्त सूझ पडी (पान के रस (पीक) से उसने प्रेमी की हथेली पर कुछ लिखा और विदा हो गई। स्पष्ट है कि जब राजकुमार की मोह-निद्रा भग हुई तो वह बहुत निराश हुआ। उसने भिक्षुक का भेष बनाया, हाथ मे दण्ड लिया, कन्धे पर मृगछाला डाली और प्रेमिका की खोज मे पैठान का राजमहल छोड दिया। पालीताना पहुँच कर वह शहर की पुरानी बावडी में मुँह-हाथ धोने लगा, जब वह स्नान करने लगा तो उसे एक पुर्जा दिखायी दिया जिस पर लिखा था "कालिका के मदिर मे ली हुई शपथ याद रखना।" इन अक्षरो का अर्थ समझाने के लिए किसी व्याख्याकार की आवश्यकता न थी, इन्हें प्रेम की आँखें ही पढ सकती थी, और कोई नही। शालिवाहन के युवराज का हृदय खुशी से भर गया; उसने तुरन्त ही प्रसन्नता से डण्डा उठाया और उत्साह के साथ मरुस्थल की ओर पुनः प्रस्थान किया।

पाठकों को कहानी के इतने ही अश से सतोष करना पडेगा (क्योंकि अवशिष्ट भाग मेरी टिप्पणी और प्रति दोनो ही से गायब हो गया है।) अथवा जीवित इतिहासकारो से परिणाम ज्ञात करने के लिए पालिताना की बावड़ी का आश्रय लेना पडेगा। क्योंकि यद्यपि सार्वलिगा का पुर्जा तो अब इसकी शोभा नहीं बढाता है। परन्तु जब तक यह बावड़ी कायम रहेगी तब तक यह कथा मुँहो मुँह कही जाती रहेगी। भारत मे ऐसे बहुत से कथानक प्रचलित हैं, जिनके मूल में कोई न कोई ऐतिहासिक वृत्तान्त रहता है, जिसमे साधारण कृषक से लेकर राजा तक समान रूप से परिचित होते हैं।

टॉड साहब द्वारा उल्लिखित पालीताणा की बावड़ी कितनी पुरानी है और अब किस रूप मे है। इसकी मुझे जानकारी नहीं है। इस नगर से सदयवत्स सार्वलिगा का सम्बन्ध क्यो व किस तरह हुआ यह भी विचारणीय है। और भी इनके स्मारक कही है या नहीं अन्वेषणीय है। एक गुजराती पत्रिका मे सन्देश रासक से भी कोई पुराना उल्लेख सदय-वत्स सार्वलिगा सम्बन्धी मिलना चाहिए क्योंकि एक मुसलमान कवि ने उसके समय की बहुत प्रसिद्ध कथा के रूप मे इसका उल्लेख किया है भीम कवि ने १५ वी शताब्दी मे सदयवत्स प्रबन्ध की रचना की। इससे पहले की कोई छोटी-बडी रचना कही मिल सके तो खोजी जानी चाहिए। आशा है शोध-प्रबन्ध लिखे जाने के प्रसग से इस सम्बन्ध में कोई नई महत्वपूर्ण जानकारी प्रकाश मे आयेगी।

★ श्री अगरचन्द नाहटा

रायसिंह सांदू कृत "मोतियै रा सोरठा"

दोहा अपभ्रंशकालीन महत्वपूर्ण छन्द है, जो छोटा होने पर भी सक्षेप मे गम्भीर भावों का सुन्दर वाहक बना। अपभ्रंश काल से लेकर अब तक लाखों दोहे राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं मे सैकड़ों कवियों द्वारा लिखे गये। उनमे राजस्थानी और हिन्दी मे तो दोहा छन्द बहुत ही लोकप्रिय हुआ। कई बड़े-बड़े काव्य दोहा मे ही लिखे गये। कई काव्यों मे चौपई आदि अन्य छन्दो के साथ भी इसका प्रयोग कवियों ने किया। जैन कवियो ने हजारो रास, चरित्र-काव्य बनाये। उनका प्रारम्भ दोहो से ही होता है और प्रत्येक ढाल के प्रारम्भ या अन्त मे कुछ दोहे अवश्य रचे गये है। 'ढोला मारू रा दूहा' सात सौ से अधिक दोहा वाला काव्य है। कवि गणपति रचित 'माधवानल कामकदला प्रबन्ध' पचीससौ दोहों की रचना है। अनेक राजस्थानी बातों मे गद्य के साथ-साथ दोहे भी पाये जाते हैं। मुक्तक काव्य या सुभाषित के रूप मे तो हजारों दोहे मिलते हैं। [illegible] राजस्थानी भाषा के ही दोहो का संग्रह किया जाय तो उनकी संख्या हजारो पर ही नही लाखों तक पहुँचेगी।

राजस्थानी दोहों की [illegible] विशेषता उल्लेखनीय है। प्रथम तो दोहे के [illegible] प्रकारों का मिलना है। इस सम्बन्ध में जैन कवि राजसोम ने 'दूहा चन्द्रिका' नामक स्वतन्त्र छन्द ग्रन्थ लिखा है, जिसे मैंने मरु-भारती में प्रकाशित कर दिया है। दूसरी विशेषता चारण कवियों के दोहों में प्राय वयण-सगाई अलंकार का निर्वाह दिखाई देता है। [illegible] दोहे मैंने मरुवाणी आदि मे प्रकाशित किये है। यह भेद हिन्दी के दोहों मे प्रायः नहीं मिलेगा।

राजस्थानी दोहों की एक और विशेषता भी उल्लेखनीय है। सैकड़ों दोहे ऐसे भी मिलते है जो कवि ने किसी को सम्बोधित करके कहे है और सम्बोधित व्यक्ति का नाम दोहे के अन्त मे दे दिया है। इसी प्रकार राजिया, चकरिया आदि के दोहे-सोरठे हैं। [illegible] ६० सोरठे प्रकाशित किये जा चुके [illegible] मोतिये को सम्बोधित किया है। [illegible] दोहों के द्वारा कवि का नाम गौण हो गया और जिस व्यक्ति को सम्बोधित करके ये दोहे कहे गये वह अमर हो गया। "मोतिये रा सोरठा" नामक [illegible] की [illegible] रचना श्री [illegible] से मुझे प्राप्त हुई इसलिए मैं उनका आभारी हूँ।

श्री रायसिंह सांदू का जीवन परिचय

राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता के संग्रह मे राजस्थानके ९६ कवियो की संक्षिप्त जीवनियां संगृहित है। उनमे से रायसिंह सांदू का जीवन परिचय, इस प्रकार है —"ये गांव मृगेसर, वाली परगना, के रहने वाले थे और बडे हरिभक्त थे। ये महाराजा तख्तसिंह (जोधपुर) के समकालीन थे, जो गद्दी पर सं० १९०० मे बैठे और सं० १९३० मे मरे, तथा उनके कृपापात्र भी थे। एक समय ये अपने गांव से आधे कोस की दूरी पर लक्ष्मीनारायण के मंदिर मे दर्शन करने गये, जहा कि नियमित रूप से दर्शनार्थ जाया करते थे। वहा उस समय नागे साधुओ की जमात टिकी थी। मन्दिर मे इनको हुक्का पीते देख साधुओ ने आक्षेप किया, तब उन्होने कहा कि मैं तो ठाकुरजी की आज्ञा से पीता हूँ और मेरे ठाकुर जी भी पीते है। नागो ने कहा कि अच्छा ठाकुरजी को अभी हुक्का पिलाओ, तो निम्न दोहा कह कर इन्होने हुक्के की नली ठाकुर जी के मुंह मे लगादी, जिसमे से कि तत्काल पीने की आवाज आई —

आयो ईसर रेह चारण जिवाडण कारणे।
वो मत बीसारे, बिरद तिहारो श्रीजी॥

एक बार ये सोलंकियो के ठिकाने-रूपनगर-गये थे। वहा पर मोतिया नामक एक व्यक्ति ने इनकी बडी सेवा की तो उनसे प्रसन्न होकर इन्होने मोतिया के नाम से सहस्र दोहे बनाए, जिनमे से कुछ यहा पर यह है --

घालण अरी घरोह, पालण दालद पातरा।
जनमें जोधारोह, तान जिसा नृप मोतिया॥

इनका देहान्त सं० १९०६ मे हुआ। अन्तिम समय मे ये त्यागी हो गये थे और विरक्त होकर बैठे रहते थे।

रायसिंह सांदू के पिता का नाम [illegible] था। मोतिया [illegible] इनके [illegible] जीवित [illegible] था।

'दोहा' [illegible]
[illegible] ॥

इन्होने [illegible] रची थी।

अब आगे इनके दोहे दिए जा रहे हैं -

मोतियँ रा सोरठा

(१)
जगत [illegible] ।
[illegible] मोतिया॥

(२)
[illegible] ।
[illegible] मोतिया॥

(३)
जिण घर [illegible] सोना [illegible] ।
[illegible] मोतिया॥

(४)
[illegible] ।
[illegible] मोतिया॥

(५)
[illegible] ।
[illegible] मोतिया॥

(६)
[illegible] ।
[illegible] मोतिया॥

(७)
[illegible] ।
[illegible] ॥

(८)
[illegible] ।
[illegible] ॥

(९)

घोदा नाडां बार, पीछा विन खूटै परी ।
सो जळ पीयै ससार, मैहण घटै न मोतिया ॥

(१०)

लाखां आवै लोय, सपना ज्यूं जावै सरव ।
हुवै भगत ज्या होय, मुगत पगापत मोतिया ॥

(११)

सूमा रै घर सोय, हेम तणो भाखर हुवै ।
काज न आवै कोय, मिनखा वीजा मोतिया ॥

(१२)

कृपण करै धन कोय, कोटी कोटी कापुरुस ।
जावै वाधी जोय, मासी मद ज्यूं मोतिया ॥

(१३)

अजे घणी उज्जेण, भणजै दाता भोज री ।
जुग में दाता जेण, मरै न कीरत मोतिया ॥

(१४)

मया रहै न मन्न, कर भेळी वाटी करी ।
कहियो भोज करन्न, महि पुड़ मारै मोतिया ॥

(१५)

वाटी वीकाणै, "रासै" माया राठवड ।
जुग सारी जाणै, महि अन दाटी मोतिया ॥

(१६)

रिध वाटी राणैह, भीमाजळ हाथा भरी ।
जस लीधो जाणैह, मेर जिसै मन मोतिया ॥

(१७)

घालण अरी घरोह, पाळण दाळद पायवा ।
जनमै जोधारोह, मानै जिसा नृप मोतिया ॥

(१८)

सातूं मिसला सेर, त्याग घटावण तारुवा ।
नाकी राधां नेर, 'मधकर' राखी मोतिया ॥

(१९)

रण भाजै कर रेव, जीवण कज देता जकै ।
दीधो सिर जगदेव, महि जस राखण मोतिया ॥

(२०)

वाधै मूंह वजार, हाटा मे देखाहलै ।
बाजै जद तरवार, मणे तणा रहै मोतिया ॥

(२१)

जीमण पान जठैह-मिल भड़ आवै मोतिया ।
तणियो माग तठैह, मावै पैर न मोतिया ॥

(२२)

मूळावै मग मूढ, नावै भाग्न मामले ।
नुवोज माधी मूठ, मान मन्नही मोतिया ॥

(२३)

रहिया [illegible] रूप, भव पैला में भाखरा ।
भड़ाभड़ा जा भूप, महिपत रहिया मोतिया ॥

(२४)

परियो तरहिक पार,
अंग न फिरियो एक चित ।
वाधा ज्यां दरबार,
मदवा कुंजर मोतिया ॥

(२५)

कानूं काज करैह, निघुर बागा मागळा ।
भगवत पेट भरैह, पण नित रहिगै मोतिया ॥

(२६)

भट जूतै भगवान, नर नूं नर हारै नको ।
भगड़ै सकल जिहान, नूंग न विगड़ै मोतिया ॥

(२७)

रात दिवस हिक राम, पढिये जो आठू पहर ।
तारै कुटुंब तमाम, मिटै चौरासी मोतिया ॥

(२८)

परै कमाई कोय, दीपक ज्यूं नाभी दिपै ।
जीमण नीरा जोय. मुळमुळ पैरण मोतिया ॥

(२९)

खाटी अपणी खाय, आठ पहर समरै अनन्त ।
जिण री गदै न जाय, केहन उधारै मोतिया ॥

(३०)

कानी सेव करैह, दन मोटा सुन्नी दिपै ।
हेकण नाम हरैह, मीट न आवै मोतिया ॥

(३१)

दम दम तीरथ कोट, धन [illegible] नै भी [illegible] ।
लेटे लाहो लोप, मिनख जमारो मोतिया ॥

(३२)
बोलै साचा बोल, काचा नह आरै करै ।
तिण माणस री तोल, मेर प्रमाणी मोतिया ।

(३३)
जावै समदा जोय, लावै कण जो नाग रा ।
हेत घना रे होय, मोती गेती मोतिया ॥

(३४)
जोवै वाटा जोय, साठा कोसा माहगण ।
देखण रा अंग दोय, मन चित एकै मोतिया ॥

(३५)
पिड मे घणोज प्यार, मिलता मन हरखै मिलै ।
वे हेतू लखवार, मिलजो दिन मे मोतिया ॥

(३६)
प्रीत उतारण पार, जो विरला लाधै जगत ।
हेतू वणे हजार, मतलब अपणै मोतिया ॥

(३७)
जण तण आगळ जोय, पडिया काज न पालटै ।
लागै सैणा लोय, मिसरी सरसी मोतिया ॥

(३८)
पिंड मे मोटा पाप, पंथ वहता वाधा पडै ।
अळगा रहिया आप, मैला मिनखा मोतिया ॥

(३६)
जनम दियो तिण जाव, पडसी देणो पूछिया ।
हक वहणा हीसाव, माधव केणो मोतिया ॥

(४०)
अंग मे राखै आट, करिया री परमी करै ।
जटा वधाया जाट, महासिध हुवै न मोतिया ॥

(४१)
पटकै नगरा पांण, अटकै नां जाना अटक ।
जटा वधारै जाण, मिनखा ठगवा मोतिया ॥

(४२)
जाट तणै गुण जाय, रात पडै जद राचवा ।
ठग कोइ साधू थाय, माळा गहिया मोतिया ॥

(४३)
भटकै कर कर भेक, घर घर अलख जगावता ।
दुनिया रा ठग देख, मलसी पनिहा मोतिया ॥

(४४)
[illegible] ।
थकै जगावै चोर, झूठ नचावै मोतिया ॥

(४५)
हरै न [illegible] ।
हेत बिना गुण होय, मोटा [illegible] मोतिया ॥

(४६)
पावै नमिवर पीर (?) [illegible] ।
गुन गुन हुवै गरीब, मोटा [illegible] मोतिया ॥

(४७)
नागा फिरै निराट, [illegible] ।
टाली मिटै न टाट, [illegible] मोतिया ॥

(४८)
पावै पेट न राग, आवै नह [illegible] ।
दरसण [illegible] दाग, मिटै जनम रा मोतिया ॥

(४६)
हुवै न गमिया [illegible] न [illegible] ।
राजा पतना राण, मन [illegible] मोतिया ॥

(५०)
थानै हर हर थाण, [illegible] न [illegible] ।
जोगी अहुटा जाण, मन नै जीता मोतिया ॥

(५१)
जिह्वा न बोलै झूठ, [illegible] झूठ न [illegible] ।
बरजै गुण बैकूंठ, माधव [illegible] मोतिया ॥

(५२)
रात दिवस हरि नाम, [illegible] ।
नारे दुद्र न तमाम, मिटै [illegible] मोतिया ॥

(५३)
नाथै हूंता [illegible], मन दिन मे [illegible] ।
पकड़ो बिरदाधुर, [illegible] मोतिया ॥

(५४)
दीधो [illegible] ।
वे फळ [illegible] मोतिया ॥

(५५)
[illegible] ।
[illegible] मोतिया ॥

(५६)
दिन में वेळा दोय. न्हावै धोवै नीर में ।
हियै ज कपटी होय, मैल न जावै मोतिया ॥

(५७)
निस दिन धंसे नीर, भगत दिखावण भीन्टिया ।
सहत्या मार सरीर, मैला भीतर मोतिया ॥

(५८)
कूडे गाठ कणेह, राखे वजन न राखणी ।
वहड़ा घणा वणेह, मद्धे ठाकुर मोतिया ॥

(५९)
ऊडा समद अनेक, मोती नह खावण मिले ।
हंसा वाजो हेक, मानसरोवर मोतिया ॥

(६०)
आया घणो उताळ, सरियादे हेला समा ।
वण ठा हेक मवाज़, मिनडी जाया मोतिया ॥

(६१)
सहियो दुःख सदीन, भव अगळे भगवान भज ।
जे नर सुख रा जीव, महला सोवै मोतिया ॥

(६२)
रे सीहा राजेस, द्विज मिल किण दिन पद दियौ ।
उर भुज बळा असेस, मन सुंही ठाकर मोतिया ।

(६३)
होणी व्है सो होय, भली बुरी क्रम भाग री ।
स्रवण मरण ज्यू सोय, माया रै हुंप मोतिया ॥

(६४)
जाता जुगा न जाय, वाता भगता री विलम ।
मीरा मूरत माय. मिलगी सूरत मोतिया ॥

(६५)
जाणै भगत जराह, सैना काज सुधारियो ।
कीधी आप कराह, माधव खिजमत मोतिया ॥

(६६)
राजा गावै रूड, बीजी नै सोरठ बठै ।
धोबो धोवो धूड, मूडै ज्यारै मोतिया ॥

(६७)
परभाता हर पैल, झगडावत गावै विठ्ठल ।
चूंथै काती छैल, मैल जगत रो मोतिया ॥

(६८)
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] न [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥

(६९)
रह भूखा [illegible], [illegible] [illegible] न [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible], मैला [illegible] मोतिया ॥

(७०)
नोचा नर [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
पोकरणा पारीह, पुष्कर [illegible] मोतिया ॥

(७१)
आणै नाग अनेक, माटा मैं [illegible] [illegible] ।
दीठी अूभा देख, [illegible] नाग मोतिया ॥

(७२)
नेकी नवा [illegible], [illegible] [illegible] न आवै ।
भट जे चारण (भाट), महाजन हुवै न मोतिया ॥

(७३)
लाख तणा धन [illegible], [illegible] नह [illegible] [illegible] ।
महाजन मेणा मेर, मिन न रीजै मोतिया ॥

(७४)
सुणता काना सोय, मिन दाना [illegible] [illegible] ।
दीठा नजरा दोय, महाजन [illegible] मोतिया ॥

(७५)
देवै [illegible] दाम. लेवै [illegible] [illegible] [illegible] ।
वाणी मे [illegible]. मीठा [illegible] मोतिया ॥

(७६)
पय मिसरी पनगाण, [illegible] [illegible] [illegible] ।
जहर घणा घट जाण, मेटै सहज न मोतिया ॥

(७७)
कुटक बचन [illegible] [illegible], मोटा नर [illegible] [illegible] ।
जोड़ै [illegible] जोड़, मानै [illegible] न मोतिया ॥

(७८)
मरै न जनमै [illegible], [illegible] न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] रा [illegible], मरै न जनमै मोतिया ॥

(७९)
[illegible] [illegible] न [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] रै मन [illegible]. मेलै [illegible] मे मोतिया ॥

(८०)

करै जको करतार, नर कीधां होवै न कूं।
सह खावै समार, मन रा लाड्डू मोतिया ॥

(८१)

मिसरी ले अप्रमाण, सींचो घोळो घी सहित।
विष सो नीम बखाण, मीठो हुवै न मोतिया ॥

(८२)

हर रा नर हर हेत, सुमरण कर सहला कनर।
सारा ही कुटुम्ब समेत, माल्है सुरपुर मोतिया ॥

(८३)

नहचौ फळ निरधार, हलतो आखाढा हुवै।
व्है मण धान हजार, मासे कातिक मोतिया ॥

(८४)

मेले खग मग माय, धायो पण पाळो धणी।
जळ मे पूगो जाय, मंगळ तारण मोतिया ॥

(१)

हुवै किती आराम, किता हुवै दुख का करण।
करणा सारा काम, मोको लाधा मोतिया ॥

(२)

मन मोती [illegible] ।
फूटा [illegible] मोतिया ॥

(३)

[illegible] ।
[illegible] मोतिया ॥

(४)

आधी पीवै आप, [illegible] ।
पड़ली कुंभीपाक, मोटा [illegible] मोतिया ॥

(५)

साध हुवा [illegible] ।
पकड़ी [illegible] मोतिया ॥

(६)

उदै अस्त लों राज, [illegible] ।
कोट न आवै काज, [illegible] मोतिया ॥

[[illegible], जोधपुर से प्रकाशित सोरठा संग्रह से ऊपर के ६ सोरठे लिए गये हैं।]

सुभाषितों के रूप मे भारतीय साहित्य नीति-सूक्तियों से आपूर्ण है। यहाँ परम्परा जनपदीय भाषाओं मे भी अविच्छिन्न रूप से प्रवहित चली आ रही है। पर राजस्थान के अनुभव सम्पन्न कवि-नीतिकारों ने इसे नये परिधान मे मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत कर अधिक लोकप्रिय बना दिया है। यही कारण है कि आज अनपढ़ ग्रामीण भी राजिया, मोतिया, भैरिया, किसनिया आदि के नामों से संबोधित कर रचे गये दूहों को प्रसंगवश [illegible] कहते-सुनते हैं। राजस्थानी के इस नीति साहित्य का सर्वांगीण प्रकाशन अपेक्षित है।

—सम्पादक

रची। फेर बोल्यो कै म्हाराज मेरी नो [illegible] की दसा लागी थी। तो दसा इसी है चांदी-[illegible] सिर लगावै, तन को [illegible] करै, [illegible] रेत रलावै, अगातुरी, अगावदी, अंध [illegible] सिर लगावैं। दसा इसी ही मैं। पीछे राजा बोल्यो कै म्हाराज तमनै इतनो वेगो मैं [illegible] बताओ। उतरै फैतरा। कै [illegible] राजा [illegible] सोना-चांदी को दान दे। उं नी [illegible], मूंग, [illegible]

सम्मतियाँ

सुप्रसिद्ध भाषाविद् डा० हरिवल्लभ भायाणी लिखते हैं—"मरु-भारती के सभी अंक देखे। प्रत्येक अंक में मैंने अवश्य कुछ न कुछ सामग्री पाई जो मेरे अध्ययन में उपयुक्त बने। 'मरु-भारती' प्राचीन राजस्थानी साहित्य, भाषा और संस्कृति विषयक बहुत-सी मूल्यवान सामग्री एवं अध्ययन प्रस्तुत करती है। उत्तर भारत की अन्य भाषाओं और उनके प्राचीन साहित्यों—विशेष करके गुजराती और पश्चिमी हिन्दी—के अनुसन्धान और अध्ययन के लिए भी यह अत्यन्त उपकारक है।"

पंजाब विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० इन्द्रनाथ मदान सूचित करते हैं—

"It is very encouraging to find that you are devoting the pages of this journal in bringing out new facts pertaining to Hindi & Rajasthani literature of this region which have been neglected by historians of Hindi literature. I have a similar complaint against the writers of Hindi Literature for not mentioning the writers of our region who have written a good deal in the past in Hindi but it is found in Gurmukhi script. I am also seriously thinking of bringing out a research journal entitled 'Punjab Bharati' which will be devoted to research work on similar lines. I congratulate you on your enterprise which is worthy of serious attention by all scholars of Hindi."

राजस्थानी की विभिन्न बोलियों में लिखित कतिपय बातें

—श्री अगरचन्द नाहटा

राजस्थान एक विशाल और गौरवपूर्ण प्रदेश है जो पहले कई राज्यो मे बँटा हुआ था और समय-समय पर सीमाएँ बदलती रही हैं। निकटवर्ती अन्य प्रातो की बोलियों का प्रभाव भी राजस्थान निवासियो पर पडा है। व्यापार एवं विवाहादि-सबध से यहाँ के लोग बाहर गये व बाहर से लोग यहाँ आये। इसलिए दूरवर्ती प्रान्तों की बोलियो का भी प्रभाव राजस्थान की बोली पर पडा है। राजस्थान के अलग-अलग राज्यों में ही नही पर एक-एक नगर के ग्राम-नगरो एक-एक नगर के विभिन्न जातियो वाले लोगो मे भी बोली की कुछ भिन्नता है। इन बोलियो का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन अभी विशेष नही हो पाया है। २–३ स्थानो की बोलियो का कुछ अध्ययन हुआ है और १–२ स्थानों की बोलियो सम्बन्धी शोध-कार्य चालू है। जिन बोलियों का अध्ययन शोध प्रबन्ध के माध्यम से हुआ है उनका भी परिणाम प्रकाश मे आना चाहिए। और जिन बोलियो का नही हुआ है उनका योजनाबद्ध शोधपूर्ण अध्ययन शीघ्र ही किया जाना आवश्यक है।

ग्रियर्सन ने भारत की भाषाओ और बोलियों का जो अध्ययन बहुत वर्ष पहले प्रकाशित किया था उसमें मे राजस्थानी सम्बन्धी विवरण अनुवादित होकर प्रकाश मे आ चुका है। इसके बाद जयपुरी के सम्बन्ध मे एक पाश्चात्य विद्वान् ने महत्वपूर्ण स्वतन्त्र ग्रथ प्रकाशित किया था। उसके सम्बन्ध मे भी डा० सहलजी ने कुछ प्रकाश डाला है। 'मरु-भारती' में समय-समय पर राजस्थान की विभिन्न बोलियो के सबध मे श्री सीताराम लालस और मेरे लेख छप चुके हैं।

कलकत्ते की राजस्थान रिसर्च सोसाइटी ने अब से २५ वर्ष पहले इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया था। राजस्थान के ५ राज्यों मे श्री भगवती बीसेन और रघुनाथप्रसाद सिंघानिया ने जो महत्वपूर्ण साहित्य सग्रह किया था उसमे से बहुत कुछ आज भी जालान-स्मृति मन्दिर में सोसाइटी के नाम से सुरक्षित है। स्व० सिंघानिया ने सोसाइटी से सम्वत् १९९० में मारवाडी भजन-सागर नामक एक वृहद् और महत्व-पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया था। उसकी भूमिका में राजस्थानी भाषा, उसकी शाखाएँ उन बोलियो के बोलने वालों की सख्या और बोलियों के कुछ उदाहरण डा० ग्रियर्सन के ग्रन्थ से उद्धृत किये गए थे। ढूंढाडी के ब्रेकेट मे (जोधपुर) दिया गया है। वह सम्भवतः जोधपुर राज्य मे ढूंढाड का कुछ हिस्सा सम्मिलित था इसी लिए दिया गया हो। अन्य बोलियो मे गोरावाटी (अजमेर), मेवाडी (उदयपुर) मेवाडी (अजमेर) यहाँ सम्भवतः मेरवाडी नाम होना चाहिए। सिरोही, मारवाडी (सँथ की बोली) (सिरोही), थली (जैसलमेर), शेखावाटी (जयपुर), बागडी (बीकानेर), तोरावाटी (जयपुर), काठैड़ा (जयपुर) किशनगढ़ी (अजमेर), हाडोती (कोटा), सौंढवारी (झालावाड़), बोलियो के गद्य-पद्य के उदाहरण मारवाडी भजन-सागर की भूमिका मे दिये गये थे।

राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता के संग्रह में जो बहुत-सी मूल्यवान् सामग्री है, उसमें से कुछ सो ऐसी भी है कि जो उस समय संगृहीत की गई थी, पर आज राजस्थान में प्राप्त नहीं है। मैंने कलकत्ता जाने पर सोसाइटी के संग्रह मे आवश्यक सामग्री की कुछ नकलें करवाई थी। उनमे से कुछ पृष्ठों मे राजस्थान की बोलियों मे कही जाने वाली बातें भी हैं। इन बोलियो के शीर्षक जो वहाँ के रजिस्टर में दिये हुए हैं—उनके नाम ये हैं-काठैडा की बोली, जयपुर की बोली, डाग की बोली, कालीमाल की बोली, डाग भाग की बोली, डूगर वाडा की बोली, नागर चाल की बोली, नैराट की बोली, चौरासी की बोली, बीधोता की बोली, राजावाटी की बोली, मारवाडी, मारवाडी-ढूंढाडी, मारवाडी पूर्वी, मेवाटी, शेखावाटी, तोरावाटी की बोली। इनमें से कुछ नाम सम्भव है अशुद्ध हो। इन बोलियों की ये कहानियाँ किन-किन से सुनकर या किस तरह संगृहीत की गई, किस ग्राम या नगर मे किस व्यक्ति द्वारा ये इन बातों को [illegible] लिखवाया, उसका कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। कुछ [illegible] नाम भी नये से लगते हैं। इसलिए ये नाम किन-किन स्थानों के सूचक हैं इस पर भी [illegible] प्रकाश डालें।

लोक-गीत और जाति-जाति के लोगों की [illegible] है उनके सम्बन्ध में बहुत सावधानी से और सूक्ष्मता से अध्ययन करना आवश्यक है। [illegible] बोलियों में अन्तर होने पर भी राजस्थान की एक सर्वमान्य साहित्यिक भाषा भी रही है। लोक-गीतों और विभिन्न स्थानों एवं जातियों की रचनाओं के आधार पर क्या अन्तर है और कहाँ क्या [illegible] है, इस पर भी विचार किया जाना चाहिए। राजस्थान के विश्व-विद्यालयों को राजस्थान की [illegible] उपलब्ध बोलियाँ हैं उन सबका भाषावैज्ञानिक अध्ययन करवाना चाहिए।

काठैड़ा की बोली—

राजा करण की बात

राजा करण छो यो जद दांतण फाड़तो जद सवा मण सोनूं रोज दान करतो। दान करर नित बिराजमान [illegible] बाटतो। यो परबद रोज मुररा को कर [illegible]। सब राजावा में या बात मसूर हो री। उज्जैण नगरी को राजा वीर विकरमाजीत परदुख को भाजणहार नीत को चालणहार यो मनमें देखी कि म्हारी बात परतापीर तो म्हारी बणरही छै और म्हारे मसूर हो रही छै पण जो राजा करण की बात [illegible] [illegible] दान करतो को [illegible] दा सकी, यो ईसो [illegible] करता के राजा केई दन उदास से रह्यो। [illegible] राजा करण [illegible] सोनूं [illegible] कठा सूं [illegible] [illegible] पतो कोई कर सक्यो नहीं। [illegible] राजा [illegible] कि [illegible] [illegible] [illegible] करणी। [illegible] राजा वीर विकरमाजीत [illegible] [illegible] राजा [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]

नहीं अर घोड़ा की चाकरी मैं चरो हुयो। तद कै ही दिन ताई राजा निसचो करयो,सोनूं आवाको पतो पायो नही। राजा करण नै नित निति करण का रहवा का म्हैल मैं सूं काड़र देतो देख्यो। राजधानी की पैदाइस मै सूं मंगाकर देतो देख्यो नही। जद राजा वीर विक्रमादीत देखी क ओ सोनू कोई करामांत सूं आवै छै अर जद राजा दान करै छै। राजा करण नित निति दन्योध्यां की भकत घोड़ै सवार होर सहैल करवानै जाय। अर एक चाकर ने साथ ले जावै। सो नितनिति तवेला को घोडो अर चाकर ने अपणा अपणा वार अवै जूं साथ जावै। एक दिन राजा वीर विक्रमादीत जै घोड़ा की नौकरी करै छो वैको वार आ गयो। वै दिन घोडो लेकर राजा वीर विक्रमादीत राजा करण नै सवार होवा वासतै लैर गयो। तद राजा करण सवार हुयो अर सवार हैर चाल्यो। तद भौत दूर ताई कांकड मे चाल्या गयो। उजाड मैं दो घड़ी रात गयो जाती एक रोखा की वनी आई। उठै घोड़ा नै ढाबकर राजा करण उतरयो अर चाकर जो राजा वीर विकमादीत छो जै नै घोडो पकडा दीयो अर कही कै तूं अठै घोड़ानै लीयां वैठ्यो रहै। मै आऊ जते कठीनै जाजे मतनै। या कहर राजा करण वनी मैं गयो। वै भकत राजा वीर विक्रमादीन घोड़ा नै एक रौंखकै वाधी अर भकत अंदेरी रात की छी सो जठीने राजा करण गयो वै कै पाछै पाछै ईयो गयो आगांनै एक गुफा देखी जै मैं बारणै भट्टी पर कड़ावो चढ़ रह्यो अर ऊमै तेल तातो हो रह्यो। सो जाता ई राजा करण कडावा मैं कूदकर पड गयो। पडताई जीव निकल गयो अर भुंद गयो। या वात राजा वीर विक्रमादीत लुक्यो हुयो देख रह्यो। ईता मैं गुफा मैं सूं एक देत निकस्यो। वो देत कड़ावा कनै आकर राजा करण नै काडर ऊंको माम खा गयो। फकत ऊंका हाड राख्या। पाछै पाणी को छाटो देकर राजा नै सरजीवन करयो। राजा सावचेत हुयो। यै भकत वै देत कहीक माग। जद राजा करण कहीक सवा मण सोनू द्यो। वैं भकत देत हैकै कनै मिण छी तैं सूं सवा मण सोनू पैदा कियो। वो राजा नै दे दियो। राजा लेर चाल्यो। सो राजा वीर विक्रमादीत घोडा को चाकर होर गयो छो सो लुक्यो हुयो देखैं छो। वा उठासूं आगानै भाकर घोडा कनै अ यो। रोंख का सूं घोड़ा की वागडोर खोलर वैंके कनै लैर वैठ गयो। अत्ता मैं राजा करण आ गयो। आता ही सवार होकर चाल्या। सोनू राजा कै कनै मोजूद रह्यो। राजा करण अपने म्हैल मैं आकर सोनू तो मेल दियो। राजा वीर विक्रमादीत घोडा लेर तवेला मैं गयो। सारी करामात राजा करणरी देख लीनी कै अयां तो सोनू ल्यावै छै अर यो सोनू ल्यावै सो दान करै छै। दूसरै दिन राजा वीर विक्रमादीत मास खार डील रे अतर फुलेल लगार वैही देत कै ठिकाणै दन्योध्या जाय पुच्यो। राजा करण कै पैली अचर जाताई कड़ावा मैं पड गयो अर तेल मैं भुद गयो। इत्ता मैं देत वारानै आकार राजा वीर विक्रमादीत नै काडर खा गयो। पछै दे छाटार सरजीवण करयो अर कही माग। जद राजा जुवानसूं कही क मैं जो करार करूं सो आप द्यो तद मांगु। जद देत कही के आज थारा मांस सू म्हारी मसा पूरण हुई छै सो तनै यो वचन दीयो छै सो तूं मागसी जो जो देस्यूं। जद राजा वीर विक्रमादीत मागी कै आप कनै यां मण छै सो मनै द्यो। सो देत जवान मैं आकर मण देदीइ मण लेर राजा चाल्यो नोकरी छी जै पर जार पूच्यो। राजा करण की वकत देत सै पौंचवाकी छी जै वकत करण पोछयो। आगा नै जार देखै तो कड़ावो ऊंदो पड्यो छै। कडावा कनै जाकर ऊबो रैयो तै भगत देत बोल्यो कै म्हारे कनै करामात छी सो पैली जो आयो सो ले गयो अव तू क्यूं ऊबो छै। अव की ऊबो रहयो तो तनै मार नाखूं ला। ऊं भकत राजा विचारी कै ऐठै जो कोई करामात ही सो कोई ले गयो। पाछो म्हैल मैं आकर सुस्त हार सो गयो दन ऊग्योर ऊठवारी भकत

राजा मैलवारै उठर आयो नहीं। वाराने दान राना कवा। सोनू मौजूद नई। राजा मनमैं देखी कै राजकी पैदास मैं मू मगाऊ नो पार पडै नही जद भोतमो हेलो हुयो। सब लोगा नै या ठीक पड गई क राजा कनै सोनू मौजूद नही। या बात राजा कै काना पडी अर जीव तुजवो बिचारयो। तै भकत राजा वीर विक्रमादीत परदुग को काटवा हालो कुवावै छो सो घोडा मैं चाकर सो विचारी कै राजा करण मैं दुख पड गयो जद राजा करण नै जार कही कै मै राजा वीर विक्रमादीत छूं। राजा थारै मैं दुख पड गयो तू या मण ले। मण मू सोनो पाड कर दान करा दीयो। मणमू थोईको दुख कटा दियो। वै भकत राजा वीर विक्रमादीत सीक लेर रवाना आपणा सैर नै हुवो।

× × × ×

एक डूंगर मैं एक नार नै पीजरा मैं कैद कर मेल्यो जो दो तीन दनको भूखो मरयो छो वठै वो नार कनै एक बरामण चाल्यो गयो। नार कै बरामण नै कई तू मनै ई पीजरा मैं मू छोट दे तनै धरम होसी। जद वो बामण नारनै दो तीन दन को भूको तसायो देखर पीजरा की खटकी खोलदी। पीजरा मैं सू नार नीसरयो अर ऊ बामणनै कई मैं तनै खासू जद बामण वोल्यो मैं तनै पीजरा मै सू काढ्यो मै थारो काई बुरो करयो। जद नार कई अबार को वकत असयो छै महनो करवाला बुरो करणो। जद बामण कई थारा कैवाणै मानू दोनै कोई दूसरा कनै आ वात बुवादे। जद नार अर वो बामण दोन्यू चाल्या एक गैलापर नीम की रूखडो ऊबो छो जद ऊ रूखडा नै पूछी मैं ई नार को भलो करयो छूं अर यो म्हारे सू बुरो करयो चावै छै सो आ वात सनाप की क वे असाफ वी। जद वो रूखडो कई ईं नै तै माथा जावाला म्हारी छावली बैठे अर जाता जाती तोडर ले जाय सो

ऊंवार की मकत [illegible] बुरी [illegible]। [illegible] नै घोर [illegible] जाव [illegible] बोल्यो [illegible] म्हारो भलो [illegible] पीजरा [illegible] पीजरा मैं [illegible] नार [illegible] नार बोल्यो [illegible] उजीत [illegible] वामण नै [illegible] वामण नै [illegible]।

[illegible]

कै मैं इत्ता आदमी मारूं छूं जी को पाप लागै छै जीका वी थे सीरी छोक नई। जद वा ठग री वेटी ऊंरा घररानै जार या वात पूछी जद सगला घरका नट गया कै धन रा तो के सीरी छा पाप स जो करैलो जी नैंई लागैल्यो। आ वात सुणर ठग की वेटी पाछीई रजपूत कनै आगी। रजपूत नै कई अव पाप का सीरो तो कोंई वी घर का नई। सव नट गिया। धन रा मिरीस सव छै। जद रजपूत कई कै पाप तूं एकली करै अर खावा मैं ये सव लोग तूं इत्ता मिनखा को विणास कर थारै माथै क्यूं पाप बांदै छै जद वा ठग री वेटी ई वात नै विचारी कै यो कै तो साची छै जद ऊं रजपूत नै कई कै मैं अडे रयास तो म्हारा घरका म्हाकनै सोई पाप करासी तू मनै लै चाल। म्हारा घर मै धन मोकलो छै सो तो ले चालो अर मव नै सूताई छोडकर चल्या चालो सो वा ठग री लडकी घरमै सूं धन निकाल सवनै सूता छोडकर ऊं रजपूत की साथ चली गई। अर आदमी विणासै छी ज्यारा पाप सूं छूट गई। अर ऊं रजपूत सू घरबासो करलियो। वो रजपूत ऊने आपरा देस मैं ले गयो।

जयपुर की बोली

एक राजा का दो वेटां की कहाणी

एक राजा छो अर ऊं कै दो वेटा छा। भगवान की असी मरजी हुईस वो राजा वेटा वालक छा जदी मर गयो। मरती भगत आपका छोटा भाई नै बुलार आपका दोन्यूं वालका की अर आपकी राणी की सरम ऊनै घाल गयो अर या खै गयो अर ये दोन्यूं कामकाज मैं नै समजै जिते कामकाज राजा को तू करवो करजे अर ये स्याणा समजणा व्हे जाय जिद या को राजपाट याने समला दीजै। सो राजा नै मर्‍या पाछै। योई कामकाज करै अर सारा राजपाट को फुलोकुल योई मालिक व्हैगो। थोडासा दिना पाछै यो आपका मन मैं विचारी अस ये दोन्यूं भतीजा वडा व्हे जायला तो राजपाट आपणा हात सूं खुस जायलो जै व्हे तो यानै पैलीई मरा नखावा को उपाय करा। सो तो या वात विचारर घरका नाई नैं बुलायो अर ऊं नै लालच देर या कई अस तू या दोन्यूं छोरा ने मार नाख। नाई हामल तो भरलीनी। पण मन मैं घणाई पिस्तावै अर ऊं काका का कैवासूं फेरका राछ करार वा दोन्या की सवार करवानै रणवास मैं गयो। वै दोन्यू भाई सवार करावानै आया जिद नाई राछ पेटी मैं सू काड़र मेल्या अर रोवा लाग गयो। जद राणी खई अरे भाई खवास तूं क्यूं रोवै छै। राजाजी मर गया तो पड़या मर जाओ नाराण करी तो थोडासा दिना मैं ये वी राजा व्हे जायला। नेवगी वोल्यो महाराज मैं ई वात सूं कोने रोऊ मै औरी वात सू रोऊ छूं। राणी पूछीस वा काई वात छै जीसू तू रोवै छै। नेवगी खई अक म्हाराज या कवरा का काकाजी मूनै या दोन्या नै मारवा कै ताईं फैर का राछ दीना छै। अर या खई छै तू या दोन्या नै मार नाख सो म्हारज मोसू तो मार्‍या को जायनै म्हारै तो यई राजा छ मो मैं ईं वात सू रोऊ छूं। राणी खवास नै तो पाँच म्होर देर विदा कर दियो अर आप विचारी अस अव एडै रैंवा को धरम कोने जै व्हे तो या दोन्याँनै लेर कठी नै चली चालूं। या विचार रात रात का समा मैं वा दोन्यूं वालका नै लैर चाली सो चालता चालता नन्दी मालै दिन ऊग्यो अर वा दोन्यूं वालका नै भूख लागी। नदी मालै वै तीन्यूं ई वैठ गया अर हाथ मूंडो धोबा लाग गया। ऊं नदी मैं दो लाल भैती जाय छी सो वै लाल छोटक्या छोरा ने दीखी वो वा दोन्या नै दोन्यू मूट्यां मै ले लीनी अर मां नै स खई कोने। कनई एक सैर छो जी मै गया जार राणी आपको जै राइ खोलकर जोरया की दूकान मैं वेचवाने गई। जिद वो सेठ ऊं छोटक्या छोरा कनै सूं वै लाल तो ले लेनी अर ऊं का हात मैं दो लाडू दे

दीना वो छोरो भूको छो सो लाडू लेर खावा लाग गयो। सेठ वाने होली तो रैवाने वता दीनी। दो च्यार वादा बादी वा कने राख दीना ग्रर राणी ने या खईस तू म्हारी धरम की भैण छै तू र थारा बेटा थे थारा विखा का दिन ऐठेई काट द्यो ग्रर ऐंडेई रैवो करो। सो वै तीन्यू ईंडै ई रैवो करचा ग्रर वांरा खावा पीवा ने वी वो सेठ देवो करयो। सो ऐया कई दिना ताई रेवे करया। थोडा दिना पाछै वो सेठ वा दो लाल मैं सूं एक लाल तो कोई दूसरा सेठ ने वेच दिनी ग्रर एक लाल ग्रापरा देस का राजा की निजर कर दीनी। राजा लाल ने लेर ग्रापकी वेटी ने दे दीनी। राजा की वाई लाल ने लेर ग्रापका माथा की मीडी मैं लगा दीनी। ऊ राजा की वाई कनै एक सूवो छो सो वाई ऊ लाल नै सूवा नै माथा मै बताई ग्रर सूवा नै पूछी ग्रर या लाल मूनै कसीक लागी। सूवो खई म्हाराज लाल तो या घणी ई सिरै छै पण ईं वा सिणगार सू तो थे सोया कोनै जो ग्रसी २ पचास २ लाल दोन्यू ग्रोडी मीड्या मैं लगाग्रो तो सोभा होवो। जद या सुणर राजा की बाई जार राजा ने खई ग्रस दादा जी मने पचास लाल म्होई मीडी मैं लगावानै ग्रर ग्रचास ई मीडी मैं लगवाने ग्रसीई ग्रोर मगाद्यो। नतर तो मै मर जाऊ ली। जिद राजा सब साऊकारा ने बुलार या खइ ग्रर भाई म्हानै ग्रसी सौ लाल एकठी करर ल्याद्यो। जिद सब सेठ साऊकार नट गया ग्रर खई म्हाराज म्हा कने तो ग्रसी लाल एक भी कोनै म्है सो कोडा सू ल्यावा। जिद राजा वाई नै खईस वाई ग्रसी लाल तो एक बी ग्रोर कोनै मिलै तो वाई वोलीस जो थे ग्रसी सो लाल ने मगा-वोला तो मैं साच्याई मर जाऊ ली जद राजा ऊंई पैली हाला सेठ नै बुलार खइस तू ग्रसी सो लाल ग्रोर ल्याई नतर मैं तू ने मरा नाखाऊलो। सेठ बोल्यो म्हाराज चाये मारो चाये छोडो म्हारे कनै तो ग्रसी लाल एक वी कोनै। फेर राजा ऊनै पूछीस या लाल तू कोडासू ल्यायो छो। वो वोल्यो म्हाराज मैं तो या लाल ऐदा

[illegible] छो क एक लुगाई ग्रर [illegible] दो छोरा [illegible] वेचवाने म्हारी दुकान ऊपर ग्राया छा। वा [illegible] नूं छोटक्या छोरा कै रनै मैं या लाल [illegible] खावाने मैं दो लाडू दे दीना ग्रर या [illegible] नू ले लीनी ग्रर वा मा वेटा ने रैवाने मैं म्हारी [illegible] होली वता दीनी सो वै ग्रब भी ऊंई मैं [illegible] होय तो वानै हाजिर करू। राजा [illegible] त्या। सेठ जार वारी मानै [illegible] याद करै छै सो तू थारा वेटाने [illegible] जद राणी ग्रपगा वडा बेटा नै [illegible] राजा कनै गयो जद राजा ऊनै पूछी [illegible] या लाल कोडा सूं ल्यायो छो। वा [illegible] तो म्हारा छोटा भाई नै [illegible] भाई खंतो ग्रसीई सो लाल [illegible] सबनै पाणी मैं [illegible]। [illegible] छोरो मन मे फिकर करर या [illegible] म्हाराज [illegible] भाई मूनै तो ठीक कोनै [illegible]। फेर छोरो बोल्यो म्हाराज मूनै एक [illegible] द्यो मै लाल हेरवानै जाऊं [illegible] म्हारा भाई नै [illegible] या नहर या [illegible] ग्रापसी मानै [illegible] ग्रब तू लाल [illegible] ल्यासी। [illegible] कयूं [illegible] मो [illegible] नाखतो [illegible] [illegible] ल्यासूं। [illegible] नदी मालै [illegible] चाल्यो। चालता चालता [illegible] पोछो [illegible] [illegible] भाया [illegible] [illegible] छोरो वोल्यो म्हाराज [illegible]

नैतो सो लाल ल्यादे नतर तनै मरा नाखूं लो। म्हारा भाई नै एक लाल ई नदी में लादी छी सो जीमूं मैं तो लाल लेवानै ई नदी २ आयो छूं। स्यांमी नई दया लाल थारै हात कैंया आसी। जद छोरो स्यांमी नै खई अस म्हाराज म्हारै तो अव थेई छो नी कोई पाव बतावो। जिद स्यामी ऊनै खई अम भाई एक दाना कनै एक लालनदे वाई छै अर वा नित की नित लाल उगलै छै पण राकस तू नै देख लेलो तो खा जायलो। जद वो छोरो बोल्यो म्हाराज थे या बात बताई तो ऊं दानां नै भी मारवा को उपाय बतावो स्यामी बोल्यो अम भाई मैं तूने या भवूत की च्योठी दयू छूं अस तू या ऊं दाना मालै नाख दीजे मो वो दानू मर जाय लो। जद तू ऊ लालनदेवाई नै लीयाजे अर तू ऊंसूं व्यावकर लीजे। वो लडको वा भवूत की च्योठी लेर चाल्यो अर वा लालनदेवाई छी जेडे पोछ्यो। वो दानूं तो कोडे गयो छो अर वा लालनदेवाई एकली ई छी। जिद वो ऊनै देखर खई स तू म्हारी साथ चालै तो तनै ले चालू वा लालनदेवाई बोल अस दानू आपानै चालता देखले लो तो मार नांखे लो। जद वो पूछी अम दानूं कदमीक आसी आया पैली ऊनै मारर पाछै चालूं तो वा बोली थोडीसी वर मैं अवै लो। थोडी सी वरमै दानूं आयो तो लडको ऊकै मालै भवूत की च्योटी पटक दीनी अर दानूं तो भसम व्हैगयो अर वो लालनदे वाई नै घोडा मालै वठार लीयायो। सो लाल तो नेगर राजानै दे दीनी अर आप लालनदेवाई सूं व्याव कर लीनू वो राजा ऊं लडका सूं भोत राजी हुयो अर आपकी व ई भी ऊंनै ई परण दीनी अर ऊनै आपको आदो राज देवा लाग्यो जद वो लडको बोल्यो अम मैं तो थारो राज तो ल्यू कोनै म्हारो राज म्हारो काको कर्‌यूं छै सो थे थारी फौज दयो तो मैं म्हारो राज म्हारा काका सूं ले ल्यूं। जद राजा आपकी सारी फौज उनै दे दीनी अर वै मा बेटा आपको राज लेवानै आपका देस मैं आया वारो काको वाकी फौज आती देखर डरप गयो अर वा कै पना आयग्योर मन मैं भोत डरप्यो अस अव ये मूनै मार नाखसी। पण ये दोन्यूं भाई ऊनै अपणा काकानै मार्‌यो छो कोनै अर ऊंरी सारी तकसीर छी सो माफ कर दीनी अर ऊनै ऊंकी जागीर छी सो दे दीनी अर आपको राज आप लेर नीकी तरै राज करवा लाग गया। राजा राजरपरिजा चन व्है गया।

—

डांग की बोली

राजा भोज हो वारी अपणतरी कूं सुपनो आयो तो सुपनेन में तो वाकूं सोनै की मढैया दीखी जामैं ऊसो चिलतर दीख्यो फलभडै अर सीस हस अर भोत कवूल सूरत अस्तरी वाके भीतरा तो राजाने बोली कै राजा या मु ने कूं योकूं साचो दे। तो राजा बोल्यो कै 'राणी ई सुपनो तो मेसे सांचो नही होय तो राणी बोली मेरा तेरा घरबासी नही होगो तो जब राजाने कहीकि आच्छयो तेरी मरजी होय या होगो तो राणी बोली कि मैं तो जाती हू पण मेरे पेट मे आसापत है तेरी सो छोरो होगो तो तेरे कनै आज्यागो। अर छोरी होगी तो आज्यागी तो राणी व्हाले चल देई। तो चला चले एक सैर मैं पोछी तो व्हा जाय कर वजार मैं एक जगह वैठी तो एक सेठ चाल्यो आयो तो वाकू देखकर भोल्यो ऐ भाई तू खाकी है खातें आई है। जब उन राणी बोली कि असवानकी राली हूं घरती की भेली हूं। तो ऊ सेठ वातें बोल्यो आ तू मेरी घरम की भैण है तो वाकू सग रे गयो सग ले जाय कैन हवेली मे ले जाय कैन न्यारी राखदई तो ऊ बोली कै है भाई मेरे पेट मे आसापत है जे मेरे घर रै घणी को हो याको भैम मत घरियो। तो ऊ साहूकार बोल्यो कै आच्छयो भाई छोरी होगी तो म्हारी भैणाजी होगी छोरो होगो तो भैणजो होगो तो वाकै छोरो ही हुयो अर खेलतो २ कोई दस वारे वरस की ऊपर मैं हुगो तो एक दिन घोडा पै चढकं न वजार में जाहो तो घोडा घर भाजायो। मालण वेठी जावो ढकोला मे फूल

घरे जे फैलगे तो उ बोली थांरै बाप कूं रोऊ जैको जाणें खांको है ग्रर खाको नही है तो ग्ररोमकर कैन वारी मामँ ढिगार ग्रायो तो वाकीवानँ कही कि मेरो बाप को नाव वतादे। तो वाकी मैया बोली तेरो बाप राजा भोज है तो वाने कही कि मैं तो झाझ ले जाऊंगो तो एकाद दो हजार रुपया लेकर झाझ को पकड़ भर लई ग्रर समन्दर में चाल्यो तो वहां झाझ की कड़ी ग्रटकगो तो ऊ झाझ को पकड के उतरगो नीचे तो व्हां महादेवजी ने पांव में ग्रटकाराख्यो हो तो ऊ जार पोछयो तो महादेवजी ने कही कि ग्रा राजा भोज के कुंवर वीर भादर तो वाकू बावन भैरू ग्रोर चौसट जोगनी देदी ग्रोर कही कि फलाणे राजा पैं ते खडो लीजो। नो झाझ कू छोडकर छल दियो व्हा वे तो वतां पोछ्छो वा राजा कै सैर से एक न्हार गीदरो ही वा सैर में तो एक ग्रादमी की रोज भेट लगे ही वा न्हार के तो वा दिना एक कुम्हार के वेटे को वार हो तो वाकी मा रो रही ही तो राजा भोज रो वेटो वासूं बोल्यो कि भाई तू रोवे मत मैं जा बेठूगो तो वानै पूवा तो जेवाय दिये ग्रर दरवाजे मे जा सुवाय दियो बावन भैरू ग्रर चौसट जोगनीन कूं हुकम दियो कै न्हार ग्रावै तो मार डालो। जब न्हार ग्रायो दरवाजे पे ग्रात ग्रात मारयो तो दरवाजे ही दिन ऊग्यो सैर मे हेला हेगो ग्रोर कान पोछ तो वानै पैली काट लिये है ग्रब जे ग्रावे जेही कै कि ये तो मैंने मार्यो है तो राजा को ई हुकम हो जे याको मारले जाकूं वेटी दऊ ग्रोर राज दऊ तो व्हा सब भाई वेटा इक बोडै हुये उब उग्ने बात ल्योपाई कि जाने मार्यो है जा कने तो कान पोंछ होगे तो ऊ कुम्हारी बुलाई ग्रर पूछी कि तेरे वेटा को वार हो ऊ गयो क नही गयो तो ऊ बोली कि मेरे तो पावणो ग्रायो हो रात जे सूयो तो ऊ बुलाय लियो जद बोले कि याने मार्यो है जा कने कान पोछ होगे तो फटसी देगा-वाने निकाल फटक दिये जब याते बोले कि भाई तू माग याने कही कि महाराज मैं तो खांडो चाहूँ हूँ

ग्रापको तो खांडो ही सौंप दियो जब ऊ सैर बहरो ग्रायो ग्रागा ले राजा के सैर कूं जो वा राजा की वेटी राजा भोज के कुंवर के नाव की नोरतो [illegible] नारायण माऊ ठाड़ ही एक तो दानूं [illegible] एक मौजूद ही तो वा सैर मे पोछयो तो [illegible] पनिसारी बतलावै ही के राजा भोज को [illegible] तांणी कुण मे देस में है ग्रर कुणे देस मे [illegible] है जारे नांव का या राजा की बाई [illegible] लोटया ढाढै है तो ऊ बोल्यो क भाई ऊ दानू [illegible] रैवी करै है ग्रो कही कि या डूंगर में [illegible] तो ऊ जार पोजछ्यो बावन भैरू चौसट जोगनीन कू हुकम दियो खोलो मिला भट खोलर द्वार घर दई ग्रोर [illegible] उलगी तो व्हा जार देखे तो सोने की [illegible] जामैं फूल [illegible]—सीम हमे तो ऐक [illegible] छीटा दिये तो [illegible] बोली कि तू यहां क्यूं ग्रागो दानू [illegible] ताने रही ग्रब तो [illegible] गयो। [illegible] कोऊ ग्रोर काये मे [illegible] जीऊ है तो [illegible] में दबा दियो ग्रोर दानूं ग्रागो ग्रोर [illegible] ग्रादमी की बास ग्रावै है। [illegible] ग्रादमी ग्राऊ नही है। [illegible] जाय तो मैं कैसे [illegible]? [illegible] हालो तो राजा भोज [illegible] महादेव के बावन भैरू चौसट [illegible] फलाणे राजा ते [illegible] सूग्रा है जाय मारे ग्रोर [illegible] नहीं तो मरके हैं २ [illegible] जीऊ है। [illegible] निकल्यो राजा भोज को कुंवर [illegible] तो ताने दानूं [illegible] वा सूग्रा को मार [illegible] कि दानो [illegible] ज्यो [illegible] कि मोते की [illegible]

नांठो दियो । और म्हादेव कूं बांवन भैरू चौसठ जोगनी दई और झारू कूं लेर चल दियो और आपगी माता के टिगारे आयगो सोनेरी मढैया ला यगी जामें सीस हूंने फूल झड़े । वा की माता ने कही कि बेटा अब अपनो सुपनो सांचो है गयो, अब चाल तेरे पिता ढिंग चलें, तो राजा भोज ढिगार जार पोछे ये दोनू मा बेटा तो वहां सोने की मढैया धर दई वामें सीस हूंले फूल झड़े और वाते राणी बोलि कि राजा हमारो सुपनो सांचो है गो है और वे कंवर देगले तेरो स जो हम पेट मे लेगी वारो २ घर वासो हुयो जैसो सब काऊ को हो ।

एक जाट हो वाके च्यार छोरा छे, तीन तो काम करे है, नाव कोर क्वारो और एक पटेनाई पर बैठ्यो रह्यो करे हो। काम धन्दो कछू नही करे हो, तो उन तीनन ने कही काई तो कछू ही नहीं करे छै और हम कूमाते २ मरे जाय जाते याकू न्याटा करवो ज्याते इऊ सुसर हैरान होगो बैठ्यो नही रहगो तो ऊ न्याडो कर दियो और भैस बाट लई । तीन २ भैस आ गई च्यारुन के तो वारे तकदीर में वी बैठक ही लिखी जो बैठ्यां ही रह्यो जुवान जब उन्ने कही याकी भैसन ने मार रातो तो कुमाई करेगो तो भैस मार टाली । जब वाने कही चमारन ते कि भाई इन खालन ने मोकू दे जैयो सुकेर । झट चमार ने खाल सुकेर ला दई । जब खालन ने लेर चल्यो तो चलो चल २ एक उजाड ही जामें बड हो एक जब वाने कही ह्याही रह जाऊं अर या वड़ मे बैठ जाऊं तो ऊपर छहगो तो वहा च्यार चोर आये चोरी करर वो धन हो जाय लाये वाटने लगे व्हा तो झटसी देणा एक चोर हीजे क णो हो एक आंग तें वाने कही देखो भाई मो आंखते तो दीसे नहीं है तम मत के कूडा करियो नही तमारे ऊपर अकास में ते बीजरी पड़ेगी तो उनो कपट के कूडा करे तो व्हांते वा जाट ने एक खाल छोडी तो एक मग न्यूं होती आई डाड़न मे पड २ तो कार्यों ने कही अरे तमने सतके कूढा नही भरे अस बीजड़ी पडी भजो ह्याते तो छोड़ धनकूं भजने । भर ऊ उतर के न बाघ मोटर घरकूं लिया— अतो झटानी देणा वाके भैया ने कही ई तो भार्‌यो धन लायो वाते कही तूं कहांते ले आयो इतरो धन वाने कही मेरी तकदीर में लिख्यो है तो झटसी देणा उने कही रे या सारे का घर फूकद्यो तो वारे घर से आग लग दई तो ताने कुम्हार बुलाकर बोरी मे राख भुंजार गधान पे धरवा लई एक सेर कू लेगो तो रेल मे एक साहूकार मिलगो वाके सग साऊकारको लडका हो तो वा साऊकार ने कही कै भाई हमारे लड़को हैरान हैगो है याकूं गधापर बैठा ले तो ऊ बोल्यो कि भाई या मे म्होर भरी है । जे पाद देगो तो राख है जायगी । वाने कही कि भाई नही होगी हैजायगी तो म्होर देगे । वाने कही बैठगा तो चले जार कैन सैर मे उतरे तो वाने बोरी देखी तो वामे राख भरी है ई ही तो झटनी वेणा वाने कही कि भाई ये तो राख है गई तो सेठ ने कही भाई चल तोकू म्होर भर दऊ तो सेठ ने ताकू म्होर भर दई ऊ लेर कैन अपण घरकू आयगो वाके भैया ने कही खात ले आये या धन वाने कही कि वा देस मे राख बिके है म्होर बराबर तम दो एक घर और बाल देते तो न्हचाल हो जातो उने ही आपरपे घर बलाय लिये तो वेउ वेचाणो गये वा राख तो राख कोण ले दो लडालर घरकू आ गये । ओ कही रे यारो याकूं चलो कूवें में राडयावें तो बाधर कूंवा पै ले गये तो वे तो खटकेनकूं गये और वाकूं बांधर गये तो एक गुवार आयो वाने पूछ्यो के तू क्या बांध रहा है तो वाने कही कि मोकू दूसरी लुगाई करावे है सो मैं करूं कोनै । वाने कही कि भैया मैं करूंगो । झटसी देणवा तो बैठगो अर ऊ छेडी भेडने हाकर गाव कूं लेवो पडयो वे आये उनो वा कूं कूवा मे डाल दियो गाव कूं गये वे तो व्हा जार देखे तो पैलोई बैठ्यो है अरे तू कैसे आयगो तोय तो कूवा में रपड़याये तो ऊ बोल्यो के भारे बाधकर गेरते तो भोत सो रेवड लातो उनो कही रे

भैया हमने क हडीत्या लेजार घर बात २ दरद- गाड कूवा में झटमी देण आयगो घर कूं अर मावता गो वैर वाकी राम राई ऐसो चतुर हुम्यार विरयो पाप वच गयो अर उनकू मार दिये।

एक ठाकर हो तो वाके मायवे कू धनमें कछु रन नहीं हो तो झटसी देणा वाने कही कि भाई चोकरी कूं जाइगो तो एक सोण चिडैया ही जाके मोग लेरे जाय रोजीना तो ऊ सोण चिडिया वाकूं मोण नही दे। मोग चिडैया तो चुगेरे कू जाय और वाके वच्चानने रन जाय वेटा काउ को मोण मत दे दीज्यो नो ऊ नो कुवे नू गई घर पीछे तें आयो टाकर गो मोग चिटैया के वच्चा ने सोण वाकूं दे दियो तो ठाकर ऊट गी काठी खूब कस अर ऊट पें चढ कर चल दियो नो पीछे तें सोण चिडिया आई वाने पूछी वेटायो गाउ को सोण तो नही दियो है तो कै भैया हमने नो मोग दे दियो ठाकर आगो करे जाकू तो मोगा चिडैया भजी व्हा तू तो गैल मे ठाकर जानियो तो ग्ना जार वैरवानी को रूप धर लियो तो एक पोगर भरी ही पाणी ते तो वा सोणचिडैया ते । ठाकर ने पूछी तू कोण में तेरी वैरवानी नो कै घा एर ते दो हूं तो ऊट पैक बैठालई खटकेनरी दय लगी तो बोल्यो के मैं खटके वाचाऊ ताने कही के जा करया नो या पोखिर कै ढगारे खटके करवे गयो तो मटरो गर्दन सीसो लेर उलटयो बगरयो तो पोखिर को पाट मे स्याप मेंडका माऊ लरके नो य ने कही कै या गान्दो या ऊजाय से तो ताने धवरू ते मटर माम घ.दर गी जाग से ते पोर माम स्याप क फेंग्या करयो तो स्याप खूब धावगो तो आपई ठठर चलोगो। तो न तार नो छयो व्हा ऊंट पै टगारै तो सोइगो पायी ग्यार भीर रही तो सोण चिडैया ने देखी कही काटयो नो दा कही कै एक मेंढका कूं स्यार ग्यों तो तारे मेरे मेरी जाग को माम काढयो काट रे कै भटनी देगु। गोत

[illegible]

[illegible] म्हाराज । वाकूं मार राखो [illegible] वाकूं कै काले स्याप की मण मंगावो [illegible] मारैगो तो सग दरबार जोडयो [illegible] तो हुकम दियो राजाने कै काले स्याप की मण लावो नही तो सग [illegible] कूं फांसी लगाऊंगा तो सग [illegible] ने कही कै म्हाराज जे लासटका रोजीना पावै है जे लावैगो तो लसटकिया तें कही के तुम लावो मैं पाछ्यो हम लावेंगे तो अपुने भैरवते जार बैठ्यो घर सोण चिड़िया ने कही कै आज कैसे बैठ्यो है तो कै आज राजा ने ऐसी करदी नोकरी की कही है जे हम पै हांणी नहीं । काले स्याप की मण मगाई है कै घबरावै मत आ जायगी । तो वा बामण ते कही कै अब तू स्याप को रूप धर तोकूं याने सरीर को भाग लगायो हो तो अब स्याप चल्यो व्हाते तो जगल मे जार प्याटडी दई तो साप निकडआये उन्ने कही के राजासूं काले स्याप की मण चौपै लाओ नही लसटकियाकूं मारैगो तो वाई भगत काले स्याप की मण लादई तो लसटकियाकूं लाय दई लसटकिया ने राजा कूं जार दे दई तो राजा ने कही कै नाई अब का विचार करे कि म्हाराज आपरी अंगूठी कूवा में राडद्यो तो अगूठी कूवा मे राड दई फेर हुकम दियो लसटकिया कू हमारी अंगूठी लावो नही फासी लगसी तो अपुनो ही फेर जावैगो घर कैसे बैठ्यो है कै राजा की अंगूठी कूवा में गिर पडी है सो मगाई है जे नहीं आवैगी तो फांसी लगैगी । झट मेंडका कू ले जाय कूवा मे टरड २ करी तो सग मैंडका निडयाये कही कै भाई क्यू तो कै राजा की अंगूठो गिरी है दोम सो लावे नहीं सटारेलकू परवानैगो तो अँगूठी वाकू सोप दई वाने जार लसटिकिया कूं दई राजा ने कई अब का विचार करे कै आप के बड़े बड़ेन को खबर मगावो यावै तो फेर बुलार कही नै हमारे बड़े बडेन की खबर लावो नही फांसी लगैगी तुम्हारे तो फैर घर आर अपुनो बैठ्या ताने पूछी क्यूं बैठ्यो है तो राजा ने यू कहीकै बडे-बूडेन की खबर ल्याव तो कै बैठ्यो रै तू मैं जाऊं तो जार राजा ते कही कै म्हाराज तम्बड मगवावो अर मोर अरथी पै बैठाद्यो अर आग लगावो तो हाल हातई तम्बड मगाये और अरथी पै बैठायर आग लगादी तो ऊ तो सौन चिडिया ही सो धुंवाकै सग फर्र देरदी उडर आ बैठी घर मैं वन्ने कही कै जा राजा सूं कह दे कै तुमरे बडे-बूढे भोत सुखी है पर घरपे कही है कै हमारो बेटो कपूत हैगो है एक नाई नही भेजे है हमारा ढिगारे । सो वाने तीमरे दिन राजा से ऐसी ई कह दई कै आपको नाई बुलाओ है राजाने नाई ते कही कै तू बुलायो है हमारे बाप ने ऊम कै तुम जावो तो वैसे ही नाई कूं अरथी बाधर आग लगा दई । तो नाई पजडगो तो कई दन है गये नाई नही आयो आवै खांते सुसरा अंनारमन ते उन्ने राज्य करयो उनके घर धासो है गयो ।

———

मृगावती-चौपाई संबंधी कतिपय संशोधन

अगरचन्द नाहटा

पूना विद्यापीठ पत्रिका के सन १९६५ के अंक में श्री मुरलीधर शहा सम्पादित 'समय-सुंदर कृत मृगावती चौपाई' नामक लेख प्रकाशित हुआ है। समयसुन्दर के 'मृगावती रास' के आधार से मेरे भ्रातृ-पुत्र भंवरलाल ने 'सती मृगावती' नामक पुस्तक संवत् १९८६ में लिखी थी जो हमारी अभय जैन ग्रन्थमाला मे प्रकाशित हुई। हमारे अभय जैन ग्रन्थालय में ५-६ प्रतियां है और हमने इसका सम्पादन भी कर रखा है। सम्भव है अगले वर्ष तक प्रकाशित भी हो जाए।

श्री मुरलीधर शहा को इसकी एक ही प्रति मिली और वह भी काफी पीछे की है। अत मूल रचना का सम्पादन ठीक से नही हो पाया। कहीं-कही पाठ त्रुटित और अशुद्ध रह गया। पर उन्होने जो कवि और रचना के संबध में प्रकाश डाला है उनमें भी कुछ बातें संशोधन योग्य हैं। उन्होने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित मेरे लेख का तो काफी उपयोग किया है पर संवत् २०१३ में प्रकाशित हमारे 'समयसुंदर कृति कुसुमांजली' ग्रंथ को वे नहीं देख पाये, अन्यथा कुछ नवीन ज्ञातव्य उन्हे मिल जाता।

श्री शहा के लेख में लिखा गया है कि काश्मीर यात्रा मे समयसुन्दरजी भी अकबर के साथ थे, पर वे साथ नही गये थे। वाचक महिमराज ही अकबर के साथ काश्मीर यात्रा में गये थे। संवत् १६४९ में अष्टाह्निका (अष्टातिका छपा है, वह अशुद्ध है) महोत्सव मे जिनसिंह सूरि ने समयसुंदर को वाचक पद से अलंकृत किया, लिखा है, वह भी ठीक नहीं है। जिनसिंह सूरि को भी उसी समय जिनचन्द्रसूरिजी ने आचार्य पद दिया था और समयसुंदरजी को भी जिनचन्द्रसूरिजी ने ही वाचक पद दिया था। संवत १६६८ मे मुल्तान मे समयसुंदरजी ने 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र' की रचना की, लिखा गया है, पर यह उनकी रचना नहीं है। समयसुंदर के नाम पर लगभग ५०० से अधिक ग्रन्थ मिलते हैं, लिखा है, रचनायें अवश्य ५०० से अधिक हैं पर उन सबको ग्रन्थ कहना उचित नही होगा। वैसे समयसुंदरजी की ५६३ लघु रचनाओं का संग्रह हमने अपने 'समयसुंदर कृति कुसुमांजली' मे प्रकाशित भी कर दिया है पर छोटे-छोटे गीत और पदो को ग्रन्थ कहा जाय या नहीं? यह प्रश्न बना ही रहता है।

समयसुंदर की 'मृगावती चौपाई' का कथासार देते हुये लिखा गया है कि जैन जगत में महाराज चेडा और कोणिक की उतनी ही प्रसिद्धि है जितनी वैदिक जगत मे कौरव और पाण्डव की। पर वास्तव मे महाराज चेडा की कौरव-पाण्डवों की तरह प्रसिद्धि नही है। तीसरे खंड के कथासार के अन्त में जहां मृगावती का निर्वाण लिखा है वहां केवलज्ञान उत्पन्न हुआ लिखा जाना उचित था।

मृगावती चरित्र संबधी ९ रचनाओं की सूची दी गई है उनमें से पहली ८ जैन विद्वानों द्वारा रचित है और उनकी कथा एक ही है। कुतुबन आदि जैनेतर कवियों की रचनाओं में जिस मृगावती का चरित्र है वह जैन मृगावती से सर्वथा भिन्न है। केवल नाम साम्य के कारण सूची

के एक मात्र गिना देना उचित नहीं है। मृगावती, यामिनी भान वाली कथा तो कुतुवन की मृगावती कथा से भी भिन्न है। जैन कवि चन्द्र कीर्ति ने यामिनी भानु मृगावती की रचना की है और उसकी कथा सार रूप में स्वतन्त्र लेख में मैं प्रकाशित कर भी चुका हूं।

समयसुन्दर की मृगावती चौपाई की रचना का मूल आधार 'कथा सरित्सागर' को वतलाना भी ठीक नहीं है। कवि ने जैन कथा स्रोत का ही अनुसरण किया है। 'कथा सरितसागर' का कुछ भी उपयोग नहीं किया गया है। अत श्री मुरलीधर शहा ने "'बृहद् कथा मजरी' को सम्मुख रखकर उपर्युक्त कथा-भाग की रचना समयसुन्दर ने की हो ऐसा लगता है" लिखते हुये दोनों रचनाओं की तुलना के लिये उद्धरण दिये हैं, पर वे पूरे मेल नही खाते। दोनो की कथाओं में जहा-जहा समानता है वहा अकस्मात कुछ भावों या शब्दो का मेल खा जाना और वात है। वास्तव में समयसुदर ने जैन-कथा-स्रोत, विशेषत देवभद्रसूरि के 'मृगावती चरित्र' प्राकृत, का ही आधार लिया है।

सवैया, देशी, गौडी, केदार, जयश्री सोरठ, तोडी आदि को अप्रसिद्ध राग वतलाना भी ठीक नहीं है। वास्तव मे सवैया, वस्तु, दोहे, चौपाई आदि तो प्रसिद्ध छन्द हैं और भूपाल, केदार आदि राग-रागिनो भी प्रसिद्ध ही है।

अन्त मे उन्होने इस रचना के दोषो का विवेचन करते हुये लिखा है कि "कवि ने पात्रो के नामों मे गडबडी कर दी है", पर वास्तव में जैसा कि ऊपर कहा गया है, कवि की रचना का आधार जैन स्रोत ही है, 'अत कथा सरित्सागर' के नामों से तुलना करके कवि का दोष निकालना सर्वथा अनुचित है। दूसरी जो दो वाते लिखी गई है वे भी वास्तव में दोष रूप नही है। कवि अपने समय की प्रसिद्ध वातों या वस्तुओं का उपयोग करता ही है। वह कथा नायक के समय की स्थिति का ही वर्णन करे, यह न जरुरी ही है और न स्वाभाविक ही है।

'मृगावती चौपाई' के पाठ मे दो तरह की भूलें हैं। एक, शब्द का सन्धि-विच्छेद कहीं-कहीं ठीक नहीं हो पाया, इसमे अर्थ-संगति मे गडवडी होती है। दूसरे या तो लिपि को पढने या शब्दार्थ को ठीक न समझने के कारण गलत पाठ छप गया है। यहाँ केवल प्रारम्भ की दो ढालों तक के पाठ के महत्वपूर्ण सशोधन उदाहरणार्थ नीचे दिये जा रहे है।

पद्यांक	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१	वैंकठ	वीनवु
३	प्रजननी	प्रजुननी
५	जिमगेह	जिनगेह
५	सीलई धिक	सील अधिक
८	ईत्पादिक	ईत्यादिक
९	( )	सु
ढाल पहली ४	गुसीनई	गुरुनइ
७	माहैराली धामर्थी	माहरा लीधा सथी
८	कु समनीस स्त्रजा	कुसम नी स्त्रजा
१०	नी पायी	दीपायो

पद्यांक	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
ढाल दो २	ऊपरे	ओप रे
३	मीठलीरे वाघ्यो	मीढलीरे लाल वाघ्यो
६	न वलै श्रेहलगार रे	नवलै स्नेह् रे
७	वदन	वदन
७	तसूम तिणका माल रे	तमु मोनिन का माल रे
१०	झूली	कुअली
१३	भारतारनी	भरतारनी

अब अन्तिम ढाल बारहवी की कुछ अशुद्धियो का शुद्ध पाठ यहा दिया जा रहा है-

पद्यांक	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१	इग्यारमी	वारहवी
२	भीवगावे	अति चगा वे
३	सिहखडा	महर वडा
३	देप्पा	देख्या
४	मुलताणा	मुलताणी
४	.. गर	नगर
४	मुप	मुख्य
४	वछकावहु	गछ का वहु
२	परमल है	मरम लहइ
५	मुवदी तावे	मु वदीता वे
५	राहड	रीहड
७	मरूवर	मरु घर
७	भातिवे	भानि वे
८	सोहइ	मुहइ
९	कनके	पनक
९	अलुए	अलूणी
९	वीरागी	वीरगी
९	नवमी	न चगी
११	ईग्यारमी	वारहवी
११	दणिदा	दिणदा
१३	मु जग	मुजग
१३	सुणता	घणे
१५	जगीम	जगीना

तुलसीदास कृत प्रश्नोत्तर रत्नमाला

श्री अगरचन्द नाहटा
नाहटो की गुवाड, बीकानेर

'विश्वम्भरा' वर्ष ५ अक ३ मे कालीदास रचित प्रश्नोत्तर रत्नमाला प्रकाशित की थी। उसके बाद हमारे सग्रह की प्रतियो को देखते हुए तुलसीदास कृत प्रश्नोत्तर रत्न-माला एक सग्रह प्रति मे और उपलब्ध हुई, जिसे यहा प्रकाशित किया जा रहा है।

कालीदास की तरह तुलसीदास भी प्रसिद्ध कवि हैं। जिस तरह कालीदास नाम से कई कवि हुए हैं, उसी तरह तुलसीदास नाम वाले भी कई कवि हो गये हैं। अत प्रस्तुत प्रश्नोत्तर रत्नमाला सुप्रसिद्ध रामचरित मानस के रचयिता तुलसीदास की ही है, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। यह उनकी रचना है या अन्य इस नाम वाले तुलसीदास की रचना है पर है यह महत्वपूर्ण। क्योकि एक तो यह सर्वथा अज्ञात है, दूसरी बात यह है कि रचना में प्रश्नोत्तर के माध्यम मे बहुत संक्षेप मे सारपूर्ण बातें बताई हुई है। ये सभी के लिये उपयोगी एव मनन करने योग्य है। प्राप्त प्रति १९वी शताब्दी की लिखी हुई है। इसकी अन्य शुद्ध एव प्राचीन प्रति मिल जाती तो और ही अच्छा होता। अन्तिम पद्य मे रचयिता का नाम तो नही है पर लेखन प्रशस्ति मे श्री तुलसीदास कृत लिखा हुआ है।

(पाठ अत्यंत अशुद्ध है—सम्पादक)

प्रश्नोत्तर रत्नमाला

अपार ससार समुद्र मध्ये, समुज्जतो मे शरण किमस्ति।
गुरो! कृपालो! कृपया वदैत, द्विश्वेशपादाम्बुज दीर्घ नौका ॥१॥

बधो हि को यो विषयानुराग, कावा विमुक्ति विषये विरक्ति.।
कोवास्ति घोरो नरक स्वदेह, तृष्नाक्षय स्वर्ग पदं किमस्ति ॥२॥

ननार ज्ञान क श्रुति जातम् बोध , को मोक्ष हेतु. प्रथित स एव ।
द्वार किमेक नरकस्य नारी, का स्वर्गदा प्राणभृतामहिंसा ।।३।।

शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठो, जागर्ति को वा सदसद्विवेकी ।
के शत्रव सन्ति निजेंद्रियाणि, तान्येव मित्राणि जितानि कानि ।।४।।

कोवा दरिद्रो हि विशाल तृष्णः श्रीमाश्च को यस्य समस्ति तोप ।
जीवन्मृत कस्तु निरुद्यमो यः, कोवा मृत स्या त्सुखदा निराशा ।।५।।

पाशो हि को यो ममताभिधात , समोहयत्येव का सुखे स्त्री ।
को वा महान्धो मदना तुरोयो, मृत्युश्च को वा पव्यश स्वकीय ।।६।।

कोवा गुरुर्यो इन हितोपदेष्टा, शिष्यस्तु को यो गुरु भक्त एव ।
को दीर्घ रोगो भव एव साध्ये, किमौषध तस्य विचार एव ।।७।।

कि भूपणाद् भूपण मस्तिशीलं, तीर्थं परं कि स्व मनो विशुद्ध ।
कि मित्र हेय कनकच काता, श्लाव्य सदा कि गुरु वेद वाक्यं ।।८।।

के हतवो ब्रह्म गते स्तु सति, सत्सगतिर्वति विचार तोपा ।
के मति सतो खिलवीतरागा, अपास्त मोहाः शिव तत्वनिष्ठा ।।९।।

कोवा ज्वर प्राण भृता हि चिंता, मूर्खोस्ति को यस्तु विवेकहीनः ।
काय मियाका शिव विष्णु भक्ति, कि जीवत दोप विवर्जित यत् ।।१०।।

विद्याहि का ब्रह्मगतिप्रदा या, बोधोस्ति को यस्तु विमुक्ति हेतु. ।
को लाभ आत्मा वना मोहि वेदो, जित जगत् केन मनो हि येन ।।११।।

शूरात्महाशूरतमोस्ति कोवा, मनोजवाणै र्व्यथितो न यस्तु ।
प्राज्ञानि धीरस्व समस्ति कोवा, प्राप्तो न मोहं ललना कटाक्षैः ।।१२।।

विषाद्विष कि विषया. समस्ता, दुखी सदा को विषयानुरागी ।
धन्योस्ति को यस्तु परोपकारी, क॰ पूजनीयो ननुतत्र दृष्टि ।।१३।।

सर्वास्ववस्थास्वपि किन्न कार्यं, किवा विधेय विदुषा प्रयत्नात् ।
स्नेहश्च पाप पठन स्वधर्म॰, ससारमूल हि किमस्ति चिंता ।।१४।।

विज्ञात् महाविज्ञतमोस्ति कोवा, नार्या पिशाच्या नतु वचितोयः ।।
का शृंखला प्राण भृताहि नारी, दिव्य वृत्त कत्व समस्त दैन्यं ।।१५।।

ज्ञातु न शक्य हि किमस्ति सर्वै, योषिन्मनोयच्चरित्रं तदीय ।
का दुस्त्यजा सर्व जनै दुराशा, विद्याविहीन पशुरस्ति कोवा ॥१६॥

वासो न सग सहकै विधेयो, मूर्खैश्च पापैश्च खलैश्च नीचैः ।
मुमुक्षुणा किं त्वरित विधेय, सत्सगति निर्ममतेश-भक्ति ॥१७॥

लघुत्व मूल च किमर्थितैव, गुरुत्व बीजं यद् याचन किम् ।
जातोस्ति को यस्य पुनर्न जन्म, कोवा मृतो यस्य पुनर्न मृत्यु ॥१८॥

मूकोस्ति कोवा वधिरश्च कोवा, युक्तो न वक्तु समये समर्थ ।
सत्य सुपथ्य न शृणोति वाक्य, विश्वासपात्र न किमस्ति नारी ॥१९॥

तत्त्व किमेक शिवमद्वितीय, कि मुत्तमं सच्चरित यदस्ति ।
किं कर्म कृत्वा न च शोचनीय, कामारिकसारिसमर्चनाख्य ॥२०॥

शयो महाश कत्तरोस्ति कोवा, काम सकोपानृत लोभ तृष्ण ।
ना पूर्यते को वपयै श एव, कि दु ख मूल ममताभिमान ॥२१॥

कि मडन साक्षरता मुखस्य, सत्यच किं भूतहित यदेव ।
त्यक्ता सुख किं स्त्रियमेव सम्यग् देय पर कित्वभय सदैव ॥२२॥

कश्चास्ति नाशो मनसो हि मोक्ष, क्व सर्वथा नास्ति भय विमुक्तौ ।
शल्य परं किं निज मूर्खतैव, के केऽनु पास्या गुरु वश्च वृद्धा ॥२३॥

उपस्थिते प्राण हरे कृताते, किमस्ति कार्यं सुधिया प्रयत्नात् ।
वाय चित्तै सुखदय मप्र गुरारिपादाबुज मेव चित्यं ॥२४॥

के दस्यव सति कुवासनाख्या, य शोतेकं सद सिप्रविद्य ।
मातेव का या सुखदा प्रविद्या, किमेधते दानवशात् सुविधा ॥२५॥

कुतोहि भीति सतत विधेया, लोकापवादा भव काननात्व ।
कोवास्ति वधु पितरौ च को वा, विपत्सहाय परिपालको यो ॥२६॥

वुध्वा न वोद्धु परिशिष्यते किं, शिवं प्रशात सुख बोध रूपं ।
ज्ञाते कस्मिन् विदित जगत्स्यात् सर्वात्म ब्रह्मणि पूर्ण रूपे ॥२७॥

कि दुर्लभ सद्गुरु रस्ति लोके, सत्सगति ब्रह्म विचारणा च ।
त्यागोहि सर्वस्य शिवात्मबोध, कि दुर्जय सर्व जनै मनोज ॥२८॥

पर्गो पशु तेन के एनि धर्मं, प्राधीतशास्त्रोऽपि न चात्म बोध ।
कि दृरिव गानि मुधोपमा स्त्री, के शत्रवो मित्र वदात्मजाधा ॥२६॥

विद्युच्चल कि धन यौवनायु, दान पर किं च सुपात्र दत्तम् ।
कठ गते रप्य सुभि निकार्यं, किं कि विधेय मलिन शिवार्चा ॥३०॥

कि रम्नं यन्प्रीतिहर मुरारे, क्वाम थान कार्या. सततं मावाश्चौ ।
अहर्निश कि परि चिंतनीय, ससार मिथ्यात्व शिवात्म तत्व ॥३१॥

कठ गता वा श्रवण गता वा, प्रश्नोत्तराख्या मणि रत्नमाला ।
तनोतु मोद विदुषा सुरम्या, रमेश गौरीश कथेव सद्य ॥३२॥

॥ इति श्री तुलसीदास कृत प्रश्नोत्तर रत्न माला सपूर्णा ॥
अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर प्रति स. ७३८७
पत्रांक २५-२६, १६ वी शताब्दी लिखित ।

—)०(—

हिन्दी विश्वभारती के चन्द्रानुसंधान विभाग की अपूर्व उपलब्धि

यह सर्व विदित है कि अपोलो ग्यारह के चन्द्र यात्रियो को २१ दिन तक एक परमावृत्त वैज्ञानिक सदन मे इसलिए रखा गया था कि वे पृथ्वी पर चन्द्र के किसी मारक कीटाणु का प्रसार न कर सकें। परीक्षण मे सावधानी सर्वथा प्रशसनीय थी परन्तु हिन्दी विश्वभारती के चन्द्रानुसधान विभाग की ओर से दिनांक १३-४-६६ की सार्वजनिक सभा मे वेदमनीषी श्री हनुमानप्रसाद जी द्वारा शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट रूप से यह घोषित कर दिया गया था कि ब्राह्मण ग्रन्थो के अनुसार चन्द्र मारक तत्वो से सर्वथा शून्य है और वह जीवन के अनेक पोषक तत्वो से परिपूर्ण है। परीक्षण मे भी यही सिद्ध हुआ अत वैदिक विज्ञान की यह उपलब्धि सर्वथा अभिनन्दनीय एव विशेष रूप से गवेषणीय है।

—सम्पादक

विमर्श

'अक्षर बत्तीसी' के रचयिता रचनाकाल और शुद्ध पाठ

● अगरचंद नाहटा

'शोध पत्रिका' वर्ष १६ अंक ४ मे श्री रतनलाल मेहता ने 'मुनि हेमत कृत अक्षर बत्तीसी' प्रकाशित की है। वास्तव मे यह बत्तीसी बहुत ही प्रसिद्ध रही है। इसकी ३ पत्राकार और २-३ गुटकाकार प्रतियां हमारे सग्रह मे है। इसके रचयिता का नाम 'हेमत' नही, मुनि महेस है और रचना सवत् भी सं० १७५० न होकर, स० १७२५ है। हमारे सग्रह मे अक्षर बत्तीसी और राचा बत्तीसी एक साथ लिखी हुई एक प्रति है। जो सवत् १७४२ के आसोज सुदी १४ गुरुवार को रिणी नगर मे सुश्राविका बाई लाली के वाचने के लिये भावसागर गणि ने लिखी है। अत: सवत् १७५० वाला पाठ तो निश्चित रूप मे पीछे से बदला हुआ है। स० १७४२ की तो लिखी हुई इसकी प्रति ही मिलती है और उसमे उसका रचनाकाल स्पष्ट रूप से स० १७२५ दिया हुआ है। यथा—

> सतरइसइ पचवीस मइ, संवत कीयउ वखांण।
> उदइपुरइ उल्हिमकी, मुनि महेस हित आंण ॥३४॥

ले० सवत् १७४२ वर्षे आसू सुदि १४ दिने श्री गुरुवासरे उपाध्याय श्री ५ श्रीभाव प्रमोदजीगणि वराणा मते वासी भावसागर गणि ना लिखितमस्ति श्री रिणीनगर मध्ये सुश्राविका बाई लाली वाचनार्थम् ॥

दूसरी प्रतिया भी १८वी शताब्दि की लिखी हुई है और उन सबमे अन्तिम पद्य मे रचयिता वाले पाठ मे मुनि महेस ही है, हेमत नहीं।

श्री रतनलाल मेहता को जो प्रति मिली है वह काफी पीछे की है। उसका पाठ भी काफी अशुद्ध है। कही पाठ परिवर्तन भी किया हुआ है और ३० वा पद्य नया जोड़ा हुआ मालूम पड़ता है। क्योकि हमारी प्रतियो मे वह पद्य नहीं है और कुल पद्यो की सख्या ३४ ही है, ३५ नही। शुद्ध पाठ पुन प्रकाशित करना आवश्यक समझकर दो प्रतियो के आधार से सम्पादित पाठ पुन प्रकाशित किया जा रहा है।

वर्णानुक्रम के अक्षरो के प्रारम्भ से रची जाने वाली बावनी, बत्तीसी, बारहखडी आदि रचनाओ के सम्बन्ध में मेरा लेख बहुत वर्ष पहले 'मधुकर' मे प्रकाशित हुआ था। उसको कुछ परिवर्द्धित कर नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे प्रकाशित किया गया था। इस प्रकार की रचनायें सबसे अधिक हमारे अभय जैन ग्रन्थालय मे ही प्राप्त है और मैंने प्रयत्नपूर्वक ऐसी रचनाओ की विशेष खोज की है। गोपालगज के प्रो० कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' ने इस विषय पर शोध प्रबन्ध लिख कर पी-एच. डी की डिग्री प्राप्त की है।

अक्षर बत्तीसी की रचना उदयपुर मे हुई है और वहा १८ वी शताब्दि के प्रारम्भ मे खरतरगच्छ,तपागच्छ,विजयगच्छ और लोकागच्छ के उपाश्रय थे। अत. मुनि महेश इन्ही गच्छो मे से किसी परम्परा मे हुये होगे। श्री रतनलाल मेहता ने मेवाड भूषण मोतीलालजी की परम्परा मे इनके होने का अनुमान किया है, वह ठीक नही लगता। मोतीलालजी के पास अक्षर-बत्तीसी का एक पत्र प्राप्त हो गया, इसी से श्री मेहता ने यह अनुमान कर लिया। पर वह पत्र तो बहुत पीछे का है और किसी अन्य प्रति से नकल कर ली गई है।

यहा एक जिज्ञासा भी मुझे है कि श्री रतनलाल मेहता ने मेवाड भूषण मोतीलालजी को बारहपंथ का मुनि लिखा है, सो तेरहपथ और स्थानकवासी सम्प्रदाय का तो मेवाड मे प्रचार रहा है। बारह पथ की क्या परम्परा रही है? इस पर श्री मेहता या अन्य कोई जानकार व्यक्ति प्रकाश डाल सके तो अच्छा हो। बारह पथ के प्रवर्त्तक कौन थे? उनकी मान्यता मे दूसरो से क्या अन्तर था? अब तक उनकी परम्परा मे कौन कौन हुये हैं और अभी कौन हैं? इन सब बातो की जानकारी प्रकाश मे लाई जाय। इस पथ के साहित्य के सबध मे भी खोज करके प्रकाश डाला जाय। आशा है 'बारहपथ के सम्बन्ध मे जानकार व्यक्ति आवश्यक सूचनायें शीघ्र ही प्रकाश मे लायेंगे।'[1]

---

१ बारहपथ सम्प्रदाय और स्थानकवासी सम्प्रदाय दोनो एक ही सम्प्रदाय हैं, इसका एक अन्य नाम बाईसपथी सम्प्रदाय भी है। स्थानकवासी सम्प्रदाय से जब आचार्य सन्त भीखणजी ने वि० स० १८१७ मे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर तेरापंथ सम्प्रदाय की स्थापना की। उसके बाद स्थानकवासी सम्प्रदाय को तेरापंथी सम्प्रदाय से भिन्न प्रदर्शित करने के लिये उसे बारहपथी या बाईसपंथी नाम से पुकारा जाने लगा। बारह पथ शब्द का प्रचलन अधिकतर मेवाड प्रदेश के गांवो मे होता है।

इस प्रकार बारह पंथ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक, मान्यता,परम्परा, साधु एव साहित्य वही है जो स्थानकवासी सम्प्रदाय के हैं।

—सम्पादक

'अक्षर वत्तीसी'

कका ते किरीया करी, करम करो ते चूर।
क्रीया विण रे जीवडा, सिवनगरी हइ दूर॥ १
खखा करम खय करो, खिमा करो मन माहि।
खाति करी सेवो सदा, जिणवर देव उछाहि॥ २
गगा गरब न कीजीयइ, गरब कीया जस हाण।
गरब कीया थी गुण गलै, गरब न करो अयाण॥ ३
घघा घर घरणी तजो, घर घटि राखउ कार।
कुटब सहू स्वारथ लगै, जम सेती विवहार॥ ४
नना निरति करो सदा, विरति करो मन माहि।
विरति विना रे प्राणीया, दुरगति[1] लेसी साहि॥ ५
चचा चोरी परिहरो, चोरी करम चडाल।
विजइ चोर चोरी थकी, नरग गयो ततकाल॥ ६
छछा छलिन कीजीयै, छल माया नउ मूल।
छल करि ते सीता हरी, दश शिर[1] देखो सूल॥ ७
जजा जोर न कीजीयइ, जिण तिण सेती ताणि।
जोर कीयां जुगतउ नही, आखै दुनी अयांण॥ ८
झझा झूठ न बोलियइ, झूठइ अपजस होइ।
वसु राजा झूठै थकी, दुरगति जातो जोइ॥ ९
नना नमण करउ सदा, नमतां नव निधि होइ।
देव गुरु माता-पिता, हेत धरै सहु कोइ॥ १०
टटा टेक न छाडीयै, धरम ध्यान रह रीति।
काम देव टेकइ रहो, देव परिख्या जीति॥ ११
ठठा ठिक माहे रहो, ठिक विण ठामि न होइ।
ठिकथी चूका जीवडा, सिवपुर कदे न होइ॥ १२
डडा डायण राखसी, तिसना ते घट माहि।
जे तिसना(ते)नवि वचीया, ते सुरगापुरि जाहि॥ १३
ढढा ढाकण जगत[2] रो, जग गुरू माथै राखि।
परदेसी केसी गुरु, राय प्रसेणी साखि॥ १४

---

[1] दुर्गति।

[2] जुगत।

णणा नित नवकार गुरिण, चवदै पूरव सार ।
सुं दसण नवकार थी, सेठ कुले अवतार ।। १५

तता तीने आदरो, तीन तत सरदार ।
देव धरम गुरु–निरमला, राखौ हीयैं मझारि ।। १६

थथा थिरमनि राखीयै, आतम वन अभिराम ।
विसन सात दुरइ तजो, पामो सिवपुर ठाम ।। १७

ददा दानज दीजीयइ, दया करो[1] चित धार ।
गज भविससलो राखीयो, मेघ कुमर अवतार ।। १८

धधा धरमज कीजीयइ, धरम थकी धन होइ ।
धरम विना रे जीवडा, सुख न दीठो कोई ।। १९

नना नर भवतइ लहो, वलेज आरिज खेत ।
मानव भव छइ दोहिलो, चेत सकै तो चेत ।। २०

पपा पाप न कीजिइ, अलगा रहीयै आप ।
जे करसी सो पावसी, क्या वेटो क्या वाप ।। २१

फफा फेर न कीजीयइ, खारण दारण धन धाम ।
फेर कीया फीको पडै, सीझइ कोई न काम ।। २२

बबा बापड मुगतरी, कीजै धरम मू हेत ।
बीजो वायड सहु तजो, परमइ सिवपुर खेत ।। २३

भभा भर जोवन समइ, मनस्या राखो ठाम ।
सील रयरण घर गाठडी, वसि करि इन्द्री गाम ।। २४

ममा माया परहरो, ममता मूंकउ दूर ।
नद राजा ममता थकी, पोहतो नरक हजूर ।। २५

यया जाप जपो सदा, आणी निरमल भाव ।
जाप जापो जिरण तणो, जव छूटकवारो थाय ।। २६

रणा रीस न कीजीयइ, रीस कीया तन हाण ।
रीस कटारी ले मरै, हिताहीत नवि जारिण ।। २७
लला लालच दूरि करि, खाण पाण वसु वेस ।
लालच लागा जीवडा, छाडी जाय परदेस ।।
ववा वइर न कीजीयइ, वइरइ जुध विणास । २८

---

१ धर्म

उत्तराध्ययन केन्द्र यकी, चौथो कुल नो नाम ॥ २९

मना नामड मत करउ, जिण भाख्यो परमाण ।
नाग माहे जीवडा, निन्हव भाख्या जाण ॥ ३०

गया गीज न कीजिये, किण ही कह्यो कुबोल ।
अर्जुनमाली नो परे, जग माहि बाधै तोल ॥ ३१

इहा हित वाछो सदा, पट जीवन हितकार ।
हित यकी हित ऊपजै, आवै सहु ममार ॥ ३२

अक्षर बतीसी एक हीं, सबोधन हितकार ।
इहा ग्रन्थ बीनाग्नी[1], पामै भव नउ पार ॥ ३३

सतरइसइ पचीसमइ, सवत कीयउ वखाण ।
उदइपुरि उदिम कीयउ, मुनि महेस हित जाण ॥ ३४

इति अक्षर बतीसी समाप्ता ॥ पं० चद्र भाण लिखित । श्री विक्रमपुर मध्ये ॥

नाहटों की गुवाड़
बीकानेर, राजस्थान

क्या पद्मनाभ स्वामी की प्रतिमा कुंभा कालीन है ?

● रामवल्लभ सोमानी

शोध पत्रिका (त्रैमासिक) वर्ष १९, अंक ४ मे श्री बलवन्तसिंह मेहता का शोध लेख प्रकाशित हुआ है। विद्वान लेखक ने पद्मनाभ की प्रतिमा को कुंभा कालीन माना है किन्तु प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख मे इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती है। लेख के पूर्व भाग में वर्द्धमान शाह के पूर्वज महणपाल नवलखा का प्रसंगवश उल्लेख है। यह महाराणा कुंभा का प्रधान मंत्री था और मैंने महाराणा कुंभा पुस्तक मे इस परिवार का विस्तृत परिचय दिया है। प्रस्तुत लेख वि० सं० १८१९ का है। इसको ध्यान पूर्वक पढ़ने से

---

1 विचारतां

प्रबंध-पंचशती के कुछ शब्दों पर विचार

(श्री भँवरलाल नाहटा)

शुभशील गणि कृत प्रवन्ध-पचशती की हस्त लिखित प्रति हमने लगभग २५-३० वर्ष पूर्व पूना-भाडारकर ओरिएण्टल इन्स्टीटयूट से मगा कर पढ़ी थी और उसके कुछ प्रवन्धो का सार व नोट लिये थे। इस ग्रन्थ मे लगभग ६२५ छोटे-मोटे प्रवन्ध है जिनमे कई ऐतिहासिक, कई पौराणिक और कई लोक-साहित्य से सम्बन्धित हैं। इस महत्वपूर्ण ग्रथ को हाल ही मे मुनिराज श्री मृगेन्द्र मुनिजी महराजा ने सु-सम्पादित कर प्रकाशित करवा दिया है। डा० हरिवल्लभ भायाणी जैसे भाषा-विज्ञान के मूर्धन्य विद्वान द्वारा लिखित विस्तृत निवन्ध-भूमिका से इस ग्रन्थ की शोभा मे प्रशसनीय अभिवृद्धि हुई है। शब्दसूची मे इतनी महत्त्वपूर्ण सामग्री भरी पड़ी है कि देश्य शब्दो के सस्कृत प्रयोगो का अध्ययन और उनका इतिहास जानने का यह प्रशस्त साधन हो गया है। इसके वाद सदिग्ध अर्थ वाले २१ शब्दो की सूची दी है, जिनमे कुछ शब्दो का यहाँ स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया जाता है:—

(१) पृ० २५२-१८ मे 'कपरिका' शब्द कँवली के लिए प्रयुक्त है। यह गुप्त शोध पत्रिका नही परतु एक प्रकार का पूठा है, जिसमें दुहरा तिहरा लपेटकर फुटकर पत्रादि रखे जाते हैं। अतिचार आदि मे कँवली को ज्ञानोपकरण मे गिनाया गया है।

(२) पृ० २१४-१७ मे चुरडक' शब्द का पर्याय 'चरूडो' राजस्थान मे प्रसिद्ध है। चरू, चरी और चरूडा उसी के आकार-भेद के नाम हैं।

(३) पृ० ५६, १४-२०-२१ मे 'दण्डालक' का अर्थ 'मोनी नी एक जात' लिखा परन्तु यह नाम योगी (दण्डी) के दण्ड से सम्बन्धित है।

(४) पृ० १३७-२६ मे 'निछारक' का अर्थ' 'घर का एक भाग' लिखा है। इसका अर्थ निसारा स० निस्सर, निकलने का स्थान गृहद्वार कहलाता है। राजस्थान में यह शब्द आज भी प्रयुक्त है। दीवाली के दिन गृहद्वार पर जो दीपक किया जाता है उसे 'निछारे का दीया' कहते हैं।

(५) पृ० १७८-२-६ मे 'प्रशक्किका' या शिक्किका का अर्थ साधुओ की झोली होता है। शिक्किका का भाषा पर्याय छीका है।

(६) पृ० ३४६–२९ ३४७ १ में भूतेल का राजस्थानी-पर्याय भतूलिया है। गोलाकार गतिशील वायु को कहते हैं। जीव विचार मे इसे 'मडलि' वायु कहा है।

(७) पृ० ४८, १२-१६; ५५, १२–१४ का 'रउलाणी' शब्द राउल का स्त्रीलिंग है, जो योगिनी का ही पर्याय है।

(८) ४४, ८७, १२५ में प्रयुक्त 'वर्त्तुलक' का अर्थ नानो गोल वाटको (?) नही परन्तु इसका पर्यायवाची 'वटलोई' अर्थात् दाल, चावल आदि रांधने के काम में आने वाले भगतिये के लिये आज भी प्रयुक्त है।

(९) पृ० १०६, ६–१०–२० में प्रयुक्त 'वलयमुख' मच्छियो का जाल (?) नही परन्तु बेंत या बांस के बने हुए उस छोटे घडे को कहते हैं, जिसका मुंह चूडी जितना होता है। उसमे छोटी मछलियां एकत्र की जाती हैं।

(१०) पृ० ५४–२७ मे शर्करा फल का अर्थ बीजोरू (?) लिखा है परन्तु कथावस्तु को देखते यह कोई फल नही परन्तु कटारी का वह फलक है, जिसे चतुर कलाकार ने शर्करा से निर्माण किया है पर फौलाद की भांति मालूम देता है और राजा ने उसको चबाकर रउलाणियो' को जीता था।

(११) पृ० २२३-१० मे प्रयुक्त संचारक 'पाखाना या गंदे नाले' के प्रयोग में है।

(१२) पृ० १६६–१० में 'समारित' शब्द का अर्थ खसी किया हुआ बैल और असमारित अर्थात् साड-सूरज का साड कहलाता है, जिसे खेती-बाडी, गाडी, घानी आदि किसी भी काम मे न लेकर खुला छोड़ दिया जाता है।

(१३) पृ० १६६, ४–८ मे 'सहोलिक' शब्द तेल की उस हांडी को कहा है, जिसको महोलिया अर्थात् राजस्थानी मे 'झावलिया' कहते हैं।



चौंसठ योगिनियों की प्राचीन नामावलियां

○ श्री अगरचन्द नाहटा

चौंसठ योगिनियों की बहुत प्रसिद्धि है। योगिनियों की कई मूर्तिया प्राप्त है और कई मंदिर भी चौंसठ योगिनियों के नाम से प्रसिद्ध है। योगिनियों के नामो की संख्या चौंसठ बतलाई जाने पर विभिन्न ग्रन्थो और नामावलियो में जो नाम मिलते है वे एक दूसरे से काफी भिन्न है। चौंसठ योगिनियो की नामावलियाँ फुटकर पत्रो और ग्रन्थो में जो भिन्न भिन्न मिली थी उनकी कई सूचिया 'शोध पत्रिका' में प्रकाशित मेरे दो लेखो में प्रकाशित कर चुका हूँ। अभी दो प्राचीन, जैन ग्रन्थो में नामावलिया और मिली है जो एक दूसरे से काफी भिन्न है उन्हें यहां प्रकाशित किया जा रहा है—

जैनाचार्य विनयचन्द्र सूरि रचित 'काव्य शिक्षा' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर से प्रकाशित हुआ, अभी मेरे देखने में आया, उसमें चौंसठ योगिनियो के नाम इस प्रकार दिये है—

'बहुरी, वाली, कात्रिनी, कुमारी, कागी, जलहरी, सीयली, नीलकठ (कठी), पारनी, तुलनी, शकरा, पिंगला, अनगमीहा, दाहनाग, श्रीवर्या, नन्दा, श्रीमगला, श्रीसिद्धा, श्रीईसावी श्रीमयरा, अपरा, ननमा, मनमा, विपहरा, अलोभी, अग्रीव, वज्रकुमारि (री), धवल कुन्दा, भिम्भला, सकारिणी, जालमालिनी, महलच्छि (च्छी), दाहना, रमा, मरसा, क्रदला, शाकिनया, तानिका, हरसिद्धि, वाडगिण (णी), कोमला, मयूरली, अभयकुमारी, जया, विजया, नेत्रा, विनेना, भैरवी, महमाया, आशापुरा, एकलवीरी, ईश्वरी, पिप्पला, ॐ, [illegible] (णी), [illegible], यूनरेना, जालिन्धरी, स्वमीपली, हिवपाडमी, हिवपतंगी, हिमशालिनी, हिमदंगी, महलव।'

सम्वत् १३२७ में जैनाचार्य सोमतिलक सूरि ने लघुस्तव की ज्ञानदीपिका टीका बनाई, उसमें १८ वें श्लोक की टीका करते हुए योगिनी विद्या के प्रसंग में चौंसठ योगिनियो के नाम और यन्त्र दिये है।

"इदं तु योगिनीनां विद्या। अतस्तत्प्रसगेन योगिनी दोष विधान यन्त्रमपि भक्तो [illegible]। नाना नामानि चैतानि—

ब्रह्माणी, कुमारी, वाराही, शङ्करी, इन्द्राणी, कङ्काली, करार्ली, काली, महाकाली, चामुण्डा, ज्वालामुखी, कामाख्या, कपालिनी, भद्रकाली, दुर्गा, अम्बिका, ललिता, गौरी, सुमंगला, रोहिणी, कपिला शूलकरा, कुण्डलिनी, त्रिपुरा, कुरु कुल्ला, भैरवी, भद्रा, चन्द्रावती, नारसिंही, निरंजना, हेमकान्ता, प्रेतासना, ईशानी, वैश्वानरी, वैष्णवी, विनायकी, यमघण्टा, हरसिद्धि, सरस्वती, तोतला, चण्डी, शङ्खिनी, पद्मिनी, चित्रिणी, वारुणी, चण्डी (प्रत्यन्तरे नारायणी), वनदेवी, यमभगिनी, सूर्यपुत्री, सुशीतला, कृष्णवाराही, रक्ताक्षी, कालरात्रि, आकाशी, श्रेष्ठिनी, जया, विजया, धूमावती, वागीश्वरी, कात्यायिनी, अग्निहोत्री, चक्रेश्वरी महाविद्या, ईश्वरी।

योगिनी दोष विधान यंत्र और योगिनी चक्र विधान इस प्रकार है—

यंत्र चेदम्—

२३	१८	१५	८
११	१२	१६	२२
१७	२४	६	१४
१३	१०	२०	२०

तामा कुंकुम-गोरोचनाभ्या यंत्रमिदं लिखित्वा विधिवत् फल पुष्पगन्ध धूप मुद्रा नैवेद्य दीप पूजा कृत्वा शुचिरेकाग्रमना,

चतुःषष्टियोगिनी- सर्वा अपि रुधिरामिषक्षीर-सुराप्रिया केलिकोलाहलगीतनृत्यरता लघ्वी तरुणी प्रौढा वृद्धा भ्रमराग्नि सूर्यशशिवर्णा विकटाक्षी विकटदन्ता मुक्तकेशा. करालजिह्वा अतिसूक्ष्ममधुरघर्घरोत्कटनिनदाः स्थिर चपलाः शान्तरौद्रच्छलबलधान प्रभविष्णुश्चतुर्भुजा दिव्यवस्त्राभरणा अंकुशपाशकपालकर्त्रिका त्रिशूलकरवालखड्गचक्रगदाकुन्तधनुर्बाणायुध विभूषिता विष्कम्भादि-सप्तविंशति योग-अश्विन्यादि-अष्टाविंशतिनक्षत्र-मेषादिद्वादशराशि-चन्द्र-सूर्यादिनवग्रह-नारसिंहवीर-क्षेत्रपाल-माणिभद्रमाहिल्लादियक्षपरिवृता। पूर्वोक्त मंत्र जपेत्। योगिनीदोषो याति।

> चतुःषष्टि समाख्याता योगिन्यः कामरूपिका।
> पूजिता प्रतिपूज्यन्ते भवेयुर्वरदाः सदा ॥१॥

इति योगिनी चक्र विधानमप्यत्रान्तभूत ज्ञेयमिति स्तोत्रार्थ"

चौसठ योगिनियों के स्वरूप और उनके ध्यान के सम्बन्ध में तत्व का वर्णन मिलता है। उसमें चौसठ योगिनियों के नाम भी दिये है, अतः तत्वविधि के श्लोक यहां उद्धृत किये जा रहे है—

"सहस्त्र प्रवक्ष्यामि योगिनीनां समासतः ।
[illegible] सुवर्णाभं त्रिशूल डमरू तथा ॥
[illegible] वामि दधान तद् ध्यायेत् सर्वांग सुन्दरम् ।
[illegible] द्वितीयक ध्याये दक्ष माला सया कुशम् ॥
दधान पुस्तकं वीणा सुदवेत मणिभूषणम् ।
[illegible] शक्ति, गदाकुन्त दधान नील वर्णकम् ॥
ध्यायेत् तृतीयं शुभद-मष्टकं शुभलक्षणम् ।
[illegible] नेटं पट्टिश च दधान परशु तथा ॥
धूम्रवर्ण चतुर्थं तद् ध्यायेदष्टक मादरात ।
कुन्त नेट च परिघ भिंडिवाल तथैव च ॥
पञ्चमाष्ट कमेनद्धि श्वेत स्यात् सुमनो हरम् ।
पीत षष्ट सुनीरक्त—मष्टम च तडित्प्रभम् ॥
कृष्णा दिक सम प्रोक्त पटा रम्याष्टमान्तकम् ।
नामानि—दिव्ययोगा महायोगा सिद्धयोगा महेश्वरी ॥
पिशाचिनी डाकिनी च कालरात्री निशाचरी ।
कंकाली रौद्रवेताली हु कारी भुवनेश्वरी ॥
ऊर्ध्वकेशी विरूपाक्षी शुष्कांगी नर भोजिनी ।
फट्कारी वीरभद्रा च धूम्राक्षी कलहप्रिया ॥
रक्ताक्षी राक्षसी घोरा विश्वरूपा भयंकरी ।
कामाक्षी चोग्र चामुण्डा भीषणा त्रिपुरान्तका ॥१०॥
वीर कौमारिका चण्डी वाराही मुण्डधारिणी ।
भैरवी हस्तिनी क्रोध-दुर्मुखी प्रेत-वाहिनी ॥११॥
खट्वागदीर्घ लम्बोष्टी मालती मत्रयोगिनी ।
अस्थिनी - चक्रिणी ग्राहा कंकाली भुवनेश्वरी ॥१२॥
कंटकी काटकी शुभ्रा क्रियादूती करालिनी ।
शंखिनी पद्मिनी क्षीरा ह्यसत्रा च प्रहारिणी ॥१३॥
लक्ष्मीश्चकामुखी लोला काकदृष्टिरधोमुखी ।
धूर्जटी मालिनी घोरा कपाली विषभोजिनी ॥१४॥
चतुः षष्टि समाख्याता योगिन्यो वरसिद्धिदा ।"

सवत् १४६८ मे रचित 'आचार दिनकर' मे ६४ नाम इस प्रकार है—

ब्रह्माणि,	कौमारी,	वाराही,	शाकरी
इन्द्राणी,	ककाली	कराली	काली
महाकाली,	चामुण्डा,	ज्वालामुखी,	कामरूा
कापाली,	भद्रकाली,	दुर्गा,	अम्बिका
ललिता,	गौरी,	सुमगला,	रोहिणी
कपिला,	शूलकटा,	कु डलीनी,	त्रिपुरा
कुरूकुल्ला,	भैरवी,	भद्रा,	चन्द्रावती
नारसिंही,	निरजना	हेमकाता,	प्रेतासनी
ईश्वरी	महेश्वरी,	वैष्णवी,	वैनायकी
यमघटा,	हरसिद्धि	सरस्वती,	तोतला
चडी,	शखिनी,	पद्मिनी	चित्रणी
शाकिनी,	नारायणी,	पनादिनी,	यमभगिनी
सूर्यपुत्री,	शीतला,	कृष्ण पामा,	रक्ताक्षी
कालरात्रि	आकाशी,	सृष्टिनी,	जया
विजया,	धूम्रवर्णी,	वेगेश्वरी,	कात्यायनी
अग्निहोत्री,	चक्रेश्वरी,	महाअम्बिका,	ईश्वरी

इसके बाद ५२ देव-वीरो के नाम भी दिये हैं।

नाहटो की गुवाड़
बीकानेर (राज०)



मालवनगर की प्राचीन मूर्तिकला

श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल

भारत के प्राचीन इतिहास मे मालव, शिवि यौधेय, अर्जुनायन आदि गणराज्यो ने अपनी-अपनी मुद्रा एव कलाकृतियो द्वारा विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है । इनकी [illegible] के परिणामस्वरूप यहा विदेशी शासको का साम्राज्य स्थापित न हो सका और इसी कारण राजस्थान मे गुप्त साम्राज्य का भी विशेष प्रभुत्व दिखाई नही देता है । इसी सघर्ष मे ईसा की तृतीय शती मे बडवा, बर्नाला, नादसा, विजयगढ, नगर आदि कतिपय स्थानो पर यूपस्तम्भो[1] की प्रतिष्ठा सम्भव हुई, जो इस भूप्रदेश पर वैदिक यज्ञो के अनुष्ठान की साक्षी है ।

जयपुर क्षेत्र मे नेवाई के पास 'रैढ' व टोक से १८ मील दूर उनियारा ठिकाना का 'नगर' ये दो स्थल भी मालवो के प्रमुख केन्द्र थे । रैढ[2] की खुदाई[3] द्वारा बहुत महत्त्वपूर्ण मृण्मूर्तियाँ मिली, कलात्मक सामग्री और सीसे की बनी मुद्रा मिली है, जिस पर 'मालवजनपद' ब्राह्मी लिपि मे उत्कीर्ण है । इस स्थल का विशेष परिचय आगामी लेख मे प्रस्तुत किया जायगा । इस समय हम अन्य केन्द्र 'नगर' की महत्त्वपूर्ण सामग्री का सक्षिप्त परिचय दिखाने का प्रयत्न करेंगे ।

---

१ द्रष्टव्य–मेरा लेख–नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ५९ (२) संवत् २०११, पृष्ठ ११६–१२०

२ सविस्तार विवरण के लिये द्रष्टव्य–डॉ० के० एन० पुरी कृत 'एक्सकेवेशन्ज एट रेढ' जयपुर :

३ १९५९ मे सर्वेक्षण के समय मुझे यहा पर ऐतिहासिक लाल–काली धरातल [Black & Red ware] वाली मृद्भाण्ड कला की भी सामग्री देखने को मिली थी । यह बैराट के पास 'जोधपुरा' मे भी उपलब्ध हुई हैं ।

Reprinted from the JOURNAL OF HARYANA STUDIES.
Vol. [illegible], No. [illegible], January 19[illegible]9

मालव

की प्रा

[illegible]

रामपुर :

: १६५६ में

a Rev

[illegible]

Reprinted from the JOURNAL OF HARYANA STUDIES,
Vol. I, No. 1, January 1969

भगवान दास निरंजनी की एक अज्ञात रचना-सिंहासन बत्तीसी की सचित्र प्रति

अगर चन्द नाहटा

भारत में जिनके राज्य शासन को बहुत ही आदर की दृष्टि से देखा जाता है, वे हैं-पुरुषोत्तम रामचन्द्र। आज भी जिस शासन में सब तरह के सब साधन प्राप्त हों और प्रजा को उचित न्याय, रक्षण व पोषण मिल सके ऐसे आदर्श राज्य की कल्पना आते ही लोक-मुख से रामराज्य का नाम प्रकट होगा। राम के बाद वैसे अनेक नीति-निपुण और प्रजा-वत्सल राजा हुये हैं और उन्होंने भारत की कीर्ति बढ़ाई पर लोक जीवन पर जिस राजा की सबसे बड़ी छाप पड़ी वे हैं वे महाराजा विक्रम। ऐतिहासिक दृष्टि से चाहे उनका समय आदि विद्वानों के लिये विवाद का विषय हो पर जनश्रुति और प्राचीन परम्परा तो यही रही है कि उज्जैन के महाराजा विक्रम के नाम से नया संवत् प्रवर्त्तन हुआ जिसे विक्रम संवत् के नाम से सभी लोग जानते ही हैं। उस महान् राजा के सम्बन्ध में अनेकों तरह की लोक-कथायें करीब १०००—८०० वर्ष से प्रसिद्ध एवं प्रचलित हैं। और उन कथाओं को लेकर संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाओं में बहुत बड़ा साहित्य रचा गया है। एक-एक कथा को लेकर कई कवियों ने काव्य लिखे हैं, और गद्य में भी कई ग्रन्थ लिखे गये हैं। संवत् २००० में महाराजा विक्रम की द्विसहस्राब्दी मनाई गई थी। उस समय मैंने विक्रमादित्य सम्बन्धी जैन-साहित्य की खोज करके एक निबन्ध विक्रम स्मृतिग्रन्थ और जैन सत्य प्रकाश के विक्रम विशेषांक में प्रकाशित करवाया था। वह परवर्ती शोध कर्त्ताओं के लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। केवल जैन विद्वानों ने विक्रमादित्य सम्बन्धी कथाओं को लेकर संस्कृत, राजस्थानी एवं गुजराती में छोटे-बड़े ६० ग्रन्थ लिखे हैं। एक-एक कथा के अनेक रूपान्तर पाये जाते हैं। और अब तो विक्रम सम्बन्धी साहित्य के सम्बन्ध में कई शोध प्रबन्ध लिखे जा चुके हैं।

विक्रमादित्य संबधी लोक-कथाओं में वैताल-पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, पंचदंड, खापराचोर आदि कथाएं मुख्य हैं। इनमें से कुछ कथाओं की परम्परा तो काफी प्राचीन लगती है। बृहत् कथा के संस्कृत रूपान्तर कथा सरित्-सागर आदि में विक्रम

Reprinted from the JOURNAL OF HARYANA STUDIES, Vol. I, No. 1, January 1969.

सम्बन्धी कुछ कथाओं का मूल स्त्रोत प्राप्त है। सिंहासन बत्तीसी की कथा का सम्बन्ध महाराजा विक्रम के साथ-साथ महाराजा भोज के साथ भी है और विक्रम की तरह ही महाराजा भोज की भी बड़ी प्रसिद्धि रही है। विक्रम अपने न्याय, दान और विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण अधिक प्रसिद्ध हुये तो भोज अपनी विद्या-सिलसिला के कारण। लोक-कथाओं में महाकवि कालिदास का सम्बन्ध इन दोनों राजाओं के साथ जोड़ा जाता है। यद्यपि यह तो निश्चित है कि कालिदास भोज से काफी पहले हो चुके हैं पर यह भी सम्भव है कि भोज की सभा में सैकड़ो बड़े-बड़े पंडित रहते थे उनमें कोई कालिदास जैसा उच्चकोटि का विद्वान् भी रहा हो। उसका नाम चाहे और हो पर अपनी विद्वत्ता के कारण लोग उसे कालिदास कहने लगे हों। या पीछे से कालिदास की प्रसिद्धि न लोक-कथाओं में भोज से भी उसका सम्बन्ध जोड़ दिया गया हो।

सिंहासन बत्तीसी की कथा का सारांश यह है कि महाराजा भोज के समय बत्तीस पुतलियों का एक सिंहासन भूगर्भ से प्राप्त या प्रकट हुआ। और जब उस पर महाराजा भोज बैठने लगे तो बत्तीस पुतलियो में से एक-एक पुतली ने भोज से कहा कि 'यह सिंहासन महाराजा विक्रमादित्य के बैठने का है, उसके जैसी दान-वीरता, न्याय-निपुणता और परोपकार वृत्ति वाला व्यक्ति ही इस सिंहासन पर बैठ सकता है। पहले म० विक्रम के इन गुणों की बात सुनलो फिर आप में ऐसे गुण यदि हों तो सिंहासन पर बैठ सकते हैं, अन्यथा बैठना उचित नहीं होगा।'

एक-एक पुतली से एक-एक कथा महाराजा भोज सुनते हैं इस तरह इन बत्तीस पुतलियों की कही हुई कथाओं के संग्रह का नाम सिंहासन बत्तीसी रखा गया। सबसे प्राचीन संस्कृत में लिखित सिंहासन बत्तीसी सन् १३०० के आस पास की मालूम देती है। तब से लेकर १९वीं शताब्दी तक ३०-४० रचनायें इस कथा को लेकर रची गई। बड़ौदा आरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट के Director मेरे विद्वान् मित्र डा० भोगी लाल सांडेसरा के निर्देशन में रणजित भाई पटेल ने शोध प्रबन्ध लिखा है। हिन्दी में लक्ष्मीदेवी सक्सेना ने डा० सत्येन्द्र के निर्देशन में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा १९६२ में इसी विषय में पी. एच. डी. की डिग्री प्राप्त की। उनके शोध प्रबन्ध का शीर्षक है—'सिंहासन बत्तीसी और उसकी हिन्दी परम्परा का लोक साहित्य की दृष्टि से अध्ययन'। अभी यह दोनों ही शोध प्रबन्ध अप्रकाशित हैं।

केवल हिन्दी भाषा में ही २०० वर्षों में सिंहासन बत्तीसी सम्बन्धी १५ ग्रन्थ रचे गये। राजस्थानी में जैन कवियों में १६वीं से १८वीं शताब्दी तक में रचित ८ काव्य प्राप्त हैं। और राजस्थानी गद्य में सिंहासन बत्तीसी के २-३ रूपान्तर मिले हैं।

इस तरह हिन्दी और राजस्थानी की करीब २५ रचनायें सिंहासन बत्तीसी की कथा को लेकर लिखी गई हैं। ज्ञात रचनाओं की सूची इस प्रकार है। सिंहासन बत्तीसी हिन्दी के रचयिता–(१) गंगाराम (२) परमसुख, (३) कृष्णदास, (४) मेघराज प्रधान, (५) सेनापति, (६) सोमनाथ (१८०७), (७) अखैराम (१८१२), (८) शिवनाथ (१८६१), (९) काजी माली (गद्य संवत् १८५८), (१०) लल्लू लाल, (११) देवी दास (१६३३), फागण सुदि ८ देवास में रचित)। २—३ अज्ञात रचयिताओं के ग्रन्थ भी प्राप्त हैं। इनमें से सोमनाथ और अखैराम के ग्रन्थो का नाम सुजान विलास और शिवनाथ की रचना का नाम विक्रम बत्तीसी पाया जाता है।

राजस्थानी—सिंहासन बत्तीसी पद्य—

(१) मलयचन्द्र (१५१९), (२) ज्ञानचन्द्र (१५९८), (३) विनयसमुद्र १६११), (४) सिद्धसूरि (१६१६), (५) हीरकलश (१६३६), (६) संघविजय (१६७८), (७) विनयलाभ (१७४८), (८) अज्ञात कर्तृक (१६७१), राजस्थानी गद्य में महाराजा अनूप सिंह जी की आज्ञा से देईदान नाइता ने सिंहासन बत्तीसी लिखी। २–३ अन्य व्यक्तियो की गद्य सिंहासन बत्तीसी प्राप्त है। इनमें से एक जोधपुर से प्रकाशित भी हो चुकी है। संस्कृत में भी कई ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें से ५ रूपान्तरों का सम्पादन विद्वान् एर्जेट ने किया था। उन ५ वाचनाओ का नाम उन्होंने दक्षिणी, लघु पद्य मय, जैन, वाररूच, दिया हैं। उनके मतानुसार दक्षिणी वाचना ही मूल कथा के सबसे अधिक निकट है। गुजरात के सुप्रसिद्ध कवि सामल ने सिंहासन बत्तीसी नामक सुन्दर काव्य बनाया और उसका काफी प्रचार भी हुआ। सामल भट्ट की सिंहासन-बत्तीसी की वार्ता १८२२ का महत्वपूर्ण सम्पादन डा० हरिवल्लभ भयाणी ने किया है। यह संस्करण भारतीय विद्या भवन, बम्बई सन् १९६० में प्रकाशित हुआ है। जैन विद्वानो के रचित संस्कृत सिंहासन-बत्तीसी सम्बन्धी कई ग्रन्थ हैं। जिनमें से क्षेमंकर देवमूर्ति रामचन्द्र सूरि और राज वल्लभ का उल्लेखनीय है।

सिंहासन बत्तीसी की कथा इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि इसके कई रूपान्तर हो गये। मुसलमानों को भी इस कथा ने आकर्षित किया। खड़ी बोली गद्य में किसी मुसलमान का किया हुआ इस कथा सम्बन्धी एक रचना भण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना के संग्रह में देखने को मिली, पर वह अपूर्ण है। हमारे संग्रह में फारसी लिपि में लिखी हुई एक सचित्र प्रति इस कथा के सम्बन्ध में है। एक-दो वर्ष पहले नागरीलिपि और हिन्दी भाषा में लिखित पद्य बद्ध कथा की सचित्र प्रति मैंने अपने शंकरदान नाहटा कला भवन के लिये खरीद की उसी का संक्षिप्त विवरण इस

-लेख में दिया जा रहा है। इस प्रति के ४४ पत्र ही मुझे प्राप्त हो सके हैं जिनमें १७वां अध्याय ही पूर्ण होता है। वैसे वत्तीस पुतलियो में से ११ पुतली की कथा ही इन १७ अध्यायो में आई है इस लिये २१ पुतलियो की कथा का काफी वड़ा अंश और होना चाहिये। प्रारम्भ में कवि ने इसका रचनाकाल व अपना नाम दे दिया है अन्यया अंतिम अंश प्राप्त न होने पर रचनाकाल व रचयिता का नाम अज्ञात ही रहता। जिस कवि की यह रचना है उसकी अन्य अनेक रचनायें प्राप्त हैं और उनके सम्वन्ध में मेरा एक स्वतन्त्र लेख 'भगवानदास निरंजनी और उनकी रचनायें' शीर्षक प्रकाशित भी हो चुका हैं। इस कवि के रचित सिंहासन वत्तीसी की कमी तक अन्य प्रति मेरे देखने में नहीं आई। प्राप्त प्रति में १३वां और २२वां दो पत्र नये लिखे हुए हैं सम्भव है मूल पत्र फट गये या नष्ट हो गये हों।

ग्रन्थ के प्रारम्भिक पद्य नीचे जिये जा रहे हैं :—

गणपति सारद प्रणमिकैं, सेस महेस मनाय।
वत्तीस लछिनी कथा की रचना करौं वनाय।१।
सत्रह सै सतावनौं, संवत सख्या नाम।
सांवन सातैं ससि विना, सुर गुरु पूरन कांम।२।
चित्रगुप्त वंसी सवैं, करैं कथा को ध्यान।
तिनि की प्रीति पिछांनि कैं, आरंभी भगवानं।३।
मंडमधि सुभ थान है, आंनंदघन कौ राज।
करैं भगति भगवान की, मिली सव संत समाज।४।
कहत नईसी लगति है, कथा पुरातन जान।
पारवती सौं प्रकट करि, कही रूद्र भगवान।५।
विक्रमराजा भरथरी, भऐसु कलिकी आदि।
कवि कालदास वरनन कीयौ, धर्म अमीं रस स्वादि।६।

इन पद्यों से स्पष्ट है कि संवत् १७५७ के श्रावण मडमधि और आनंदघन के समय में कवि भगवान ने की है।

प्रति के ४४ पत्रों में से अधिकांश पत्रो में छोटे या पूरे पृष्ठ के चित्र मिलते हैं। दो पत्र जो नये लिखे गये हैं उनमें भी चित्र होंगे क्योंकि वे वड़े अक्षरो में लिखने पर भी पूरा पत्र मूल पत्र के पाठ से भर नहीं पाया।

प्रारम्भ के ६ अध्याय तो भूमिका के रूप में हैं जिनमें विक्रमादित्य जन्म निरुपण पद्य ७० पत्र ४ में ६ चित्र हैं। अन्त की पुष्पिका में ग्रन्थकार का नाम भगवानदास

नालन्द

की प्र

निरंजनी स्पष्ट रूप से लिखा गया है। "इति श्री वत्तीन लक्षिनी कथा सिंहासन वत्तीसी नाम विक्रमाजीत को जन्म निरूपनौं नाम पार्वती ईश्वर संवादे कवि कालदास निरूपनौं नाम मूल तसि परिभाषा कृत भगवांन दास निरंजनी प्रथमोध्याय।"

द्वितीय अध्याय में ३६ पद्य ही हैं। इसमें एक पृष्ठ में पूरा चित्र है राजा भरथरी कर्म निरूपण अध्याय का नाम वतलाते हुये मूल ग्रन्थ कालिदास विरचित होने का स्पष्ट कहा गया है पर आज तक कालिदास रचित सिंहासन वत्तीसी (संस्कृत) कहीं भी जानने में नही आई।

द्वितीय अध्याय की लेखन पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्रीवतीस लक्षिनी कथा परवती ईश्वर संवादे राजा भरथरी।

करम निरूपनो नामक कवि कालिदास विरचिते मूल तीस भापा कृते भगवानदास निरंजनी विक्रम विदेश गमनो नाम द्वतीयोध्याय:।"

लेख विस्तार भय से सभी अध्यायो की सभी पुष्पिका नहीं दी जा रही है। तीसरे अध्याय से १७वें. अध्याय तक की पद्य संख्या और अध्यायो का विषय या कथा का निर्देश नीचे की सूची में किया जा रहा है।

(३) पद्य २१–राजा भरथरी वन प्रवेश,
(४) पद्य ५८–विक्रमराज वर्णन,
(५) पद्य ६८–विक्रमाजीत वन प्रवेश,
(६) पद्य ३८–सिंहासन प्राप्ति,
(७) पद्य ९६–जीया पुतरी भोज प्रवोधन,
(८) पद्य ३०–विजया पुतरी भोज प्रवोधन,
(९) पद्य ४८–जनीयां पुतरी भोज प्रवोधन,
(१०) पद्य ३१–अजीया पुतरी भोज प्रवोधन,
(११) पद्य ३२–जयघोसा पुतरी भोज प्रवोधन,
(१२) पद्य ३४–पंचघोसा पुतरी राजा भोज प्रवोधन,
(१३) पद्य ३६–कैला पुतरी राजा भोज प्रवोधन,
(१४) पद्य ३१–जयसेना पुतरी राजा भोज " प्रवोधन श्रीपाल साह की कथा
(१५) पद्य ६५–मदनमेना पुतरी राजा भोज प्रवोधन, प्रवोधन,
(१६) पद्य ३२–दसई पुतरी मदन मंजरी राजा भोज प्रवोधन।

(शेष पृष्ठ ६९ पर)

राजस्थानी भाषा का एक उल्लेखनीय कृष्ण (पुत्रों संबंधी) काव्य

अगर चद भवर लाल नाहटा

राजस्थान में भी कृष्ण भक्ति का प्रचार काफी रहा है । पास ही मथुरा, वृन्दावन, गोकुल आदि व्रजमण्डल श्रीकृष्ण की लीला भूमि के रूप में प्रसिद्ध है । कृष्ण भक्ति के अनेक सम्प्रदाय प्रवर्तित हुए । सैकडो भक्त एव रीति-कालीन कवियो ने हजारो रचनायें श्री कृष्ण सम्वन्धी की है ।

जैन आगम ग्रन्थो से लेकर अव तक प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, कन्नड, मराठी मे श्री कृष्ण सम्बन्धी अनेकों रचनायें प्राप्त है जिनमें से महोपाध्याय कविवर समयसुन्दर की प्रथमाभ्यास के रूप में रची हुई साम्व प्रद्युम्न चौपाई या प्रवन्ध का कथासार यहा प्रकाशित किया जा रहा है । श्रीकृष्ण के पुत्र साम्व और प्रद्युम्न के जीवन सम्वन्धी यह रास काव्य दो खण्डो में विभक्त है जिसमें २१ ढालें, ५३५ गाथायें है और ग्रन्थ परिमाण ८०० श्लोको का वतलाया गया है । सवत् १६५६ की विजयदशमी को खम्भात में चातुर्मास करते हुये कविवर समय सुन्दर ने जैसलमेर वास्तव्य नाना शास्त्र विचार रसिक लोढा साह शिवराज की अभ्यर्थना से इस काव्य की रचना कवि ने की है ।

काव्य के प्रारम्भ में कवि ने नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्धमान तीर्थंकर और गौतम गणधर का स्मरण करते एव नमस्कार करते हुए प्रथमाभ्यास के रूप में साम्व प्रद्युम्न कुमार चरित्र के वर्णन करने का उल्लेख किया है । कवि ने कहा है कि ८वें अग सूत्र में इसका सम्वन्ध सक्षेप से है पर मैं यहा प्रकरण के आधार से विस्तृत प्रवन्ध कह रहा हू । फिर जम्बूद्वीप, सौरिपुर, मथुरा, से यादव सोरठदेश में जाकर द्वारामती नगरी वसाई आदि का वर्णन है जिसका कथासार आगे दिया ही जा रहा है । श्री कृष्णनन्दन साम्व, प्रद्युम्न के चरित्र सम्वन्धी इस काव्य में यथा प्रसग श्री कृष्ण का भी उल्लेखनीय विवरण दिया गया है । महोपाध्याय समयसुन्दर मारवाड के साचोर में जन्मे और जैसलमेर के लोढ़ा शिवराज के लिये यह प्रथम रास या प्रवन्ध वनाया । यद्यपि रचना खम्भात (गुजरात) में हुई है पर भाषा राज-स्थानी प्रधान है ।

महोपाध्याय समय सुन्दर रचित शांव प्रद्युम्न चौपाई का कथासार

अत्याचारी कस की मृत्यु हो जाने से समस्त यादव सुखी तो अवश्य हुए किन्तु उनके चित में जरासिंधु का पूरा भय था इससे वे सौरीपुर, मथुरा आदि स्थानों को छोडकर सौराष्ट्र देश में आये। महाराज श्रीकृष्ण ने अष्टम तप करके लवण समुद्र के अधिष्ठिाता सुस्थित देव की आराधना की। देव ने प्रकट होकर याद करने का कारण पूछा तव "हमें नगर वसाने के लिये स्थान दो"। श्रीकृष्ण की इस याचनानुसार देव ने उन्हे स्थान दिया। इन्द्र की आज्ञा से धनद ने वहा आकर नगरी वसाई। वह नगरी वारह योजन लम्बी और नव योजन चौडी थी। हेम और मणि रत्नमय गगनचुम्वी अटालिकायें तो सवका चित आर्कषित करती थी उस नगरी का सारा अग प्रत्यग वैभव सम्पन्न था। राज-प्रसादो की तो वात ही क्या वे जो स्वय इन्द्र के निवास-भवन से भी अधिक छटा धारण करते थे। उस नगरी के जिन मन्दिरों की शोभा तो अवर्णनीय थी उनके उत्तग तोरण और आकाशस्पर्शी शिखर अत्यन्त ही मनोहर और चिताकर्षक थे। मनोहारिणी ध्वजा पताकायें वायु-मण्डल के प्रयोग (झकोरो) से उडती हुईं जगत को अपनी प्रशस्त कीर्ति का परिचय कराती थी। इस कथन में कुछ भी अतिश्योक्ति नही है कि वह नगरी इन्द्र की अमरावती से वैभव में कई गुणा अधिक थी धनद ने इस नगरी को सर्व प्रकार की सामग्री से सम्पन्न किया। पाठक गण। उस नगरी का नाम द्वारामती (द्वारिका) था उसी में महाराज कृष्ण न्यायपूर्वक राज्य करने लगे। श्रीकृष्ण आधे भारत के स्वामी थे। सोलह हजार मुकुटवद्ध राजा उनकी सेवा करते थे। महारानी रुक्मिणी आदि हजारो स्त्रिया थी। धन, धान्य, हाथी, घोडे, रथ, प्यादे और मणि रत्नादि की तो अपार सम्पति थी जिससे वे अर्द्धचक्री (वासुदेव) पद को धारण करने वाले महाराज कृष्ण सुखपूर्वक काल व्यतीत करते थे। उनकी पटराणियो में रुक्मिणी और सत्यभामा प्रधान थी।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी को अधिक सम्मान देते थे । यह सत्यभामा के चित पर अखरता था । एक दिवस नैमितिक प्रभावक अयमता मुनि आहार के निमित रुक्मिणी के यहां पधारे । रुक्मिणी ने उन्हें सम्मान देकर विनय से पूछा "भगवन् ! मेरे पुत्र होगा या नही ?" उत्तर में मुनिराज ने कहा "होगा!" इतने ही में सत्यभामा ने आकर छल से मुनि का यह वचन ग्रहन कर लिया मुनिराज तो चले गये पीछे से सत्यभामा और रुक्मिणी के परस्पर मुनिवचन के लिये विवाद होने लगा । अन्त में न्याय कराने के लिये दोनो महाराज कृष्ण के पास गई ।

सत्यभामा ने कहा "स्वामिन् ! रुक्मिणी को आपने क्या सिर चढा रखा है कि मुनिराज से मुझे दिये गये वचन को यह झड़पना चाहती है । राजन् न्याय कीजिये !" और दुर्योधन से कहा "भाई ! तुम्हारी कन्या मेरे पुत्र को देना" राजा दुर्योधन ने कहा" दोनो आखों में अन्तर कैसा ?" ऐसा सुनकर श्रीकृष्ण हसने लगे । सत्यभामा ने कहा "हलधर ! गिरिधर ! और दुर्योधन सब लोग सुनिये । हम दोनों में जो झूठी पडे उसे यही दण्ड दिया जायगा । जिसके पुत्र का विवाह पहले होगा उसी के साथ दुर्योधन की प्रस्तुत कन्या का विवाह होगा और उसके पडले में दूसरी का सिर मुंडकर केश रखे जायें ।

सत्यभामा द्वारा सब की साक्षी मे इस प्रकार न्याय करने पर कलह शान्त हो गया, दोनो रानिया अपने आवास मे चली गई ।

इस अवसर में एक उत्तम गुण वानजीव सातवें देव लोक से चवन करके रुक्मिणी के उदर में अवतीर्ण हुआ । उस पुण्यवान जीव के प्रभाव से रुक्मिणी ने देव विमान का प्रधान स्वप्न देखा । उसने उसका फल श्रीकृष्ण महाराज से पूछा, उन्होंने कहा "मेरे कुल में अलकार हार के सदृश तुम्हारे पुत्र रत्न होगा ।" सत्यभामा ने ऐसा सुन कपट का आश्रय ले कल्पित स्वप्न कहा "स्वामिन ! मैंने भी हर्षित चित से सूड उल्लालता हुआ एक सुन्दर ऐरावत हाथी देखा, इस का फल क्या होगा ?" यद्यपि श्रीकृष्ण जी जानते थे कि यह कल्पित मिथ्या अर्थ पूछती है तो भी शुभ होने से उन्होंने उत्तर दिया तुम्हारे भी पुत्र होगा ।

देवयोग से सत्यभामा भी गर्भवती हुई, घडे की तरह उसका उदर बढने लगा । श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि गर्भकाल से अपूर्ण दिवसों में ही इसके बालक होगा ।

रुक्मिनी ने गर्भ के दिन पूर्ण होने से यथा समय एक सुन्दर पुत्र प्रसव किया ।

दासी ने महाराज कृष्ण को बधाई दी । उन्होंने इस हर्ष के उपलक्ष में उसे मुकुट के सिवाय अपने शरीर के सर्व आभूषण देकर उसका दासत्व दूर किया । द्वारिका नगरी में घर-घर पर तोरण बन्ध गये । सन्नारिया गोत गाने लगी इसी समय सत्यभामा के हृदय में धक्का लगा और उसके भी पुत्र जन्म हुआ । दासी ने आकर महाराज को बधाई दी । उनके चित में बहुत हर्ष हुआ । सारे नगर में उत्वस की और भी अभिवृद्धि हुई । जगह-जगह पर नाना प्रकार के नाच रग और नाटक होने लगे ।

महाराज श्रीकृष्ण अपने पुत्र को देखने के लिए रुक्मिणी के महल मे गए । रानी ने उन्हें अपना पुत्र देते हुए यत्न से रखने के लिये कहा । वह पुत्र कामदेव के सदृश रूप लावण्यवान तेज कान्ति से युक्त था । श्रीकृष्ण ने उसका नाम प्रद्युम्न रखा ।

इसी अवसर मे धूमकेतू मानक देव, विमान मे बैठा हुआ आकाश मार्ग से जा रहा था । उसे कृष्ण की गोद में कुमार को देखकर पूर्वभव का वैर जागृत हुआ । वह आकाश से नोचे उतर के रुक्मिणी का वेश बनाकर श्रीकृष्ण के पास आया और कहने लगा "स्वामिन ! मेरा पुत्र दीजिये बहुत देर हो गइ । ऐसा सुनते ही श्रीकृष्ण ने तत्काल उसे दे दिया । वह धूमकेतू देव प्रद्युम्नकुमार को लेकर वैताढ्य पर्वत के भूत रमण नामक उद्यान में गया ।

दुष्ट अध्यवसाय वाला वह धूमकेतू देव विचार करने लगा "क्या इस बालक को पत्थर की चटानो पर पछाड दू । या इस भीषण कृपाणी से शिरोच्छेदन कर अपना बदला लू । या इसे क्षुधा, प्यास, शीत, और उष्णादि परिग्रह से इसे भयकर कष्ट दू । इन विचारो से उसने बालक को आकाश (व्योम) से नीचे गिराया वह पर्ण पर जा कर पडा किन्तु चरम शरीरी उसी भव में मोक्ष जानेवाला होने से उसे कौन मारने को समर्थ था । अत. बाल भी बाका न हुआ । दैव योग से एक विमान में कालसवर नामक विद्याधर जाता था उस स्थान पर आते ही उसका विमान स्तभित हो गया । कालसवर ने नीचे देखा तो बालक खेल रहा है । उसने प्रद्युम्नकुमार को उठा लिया और सोचा मेरी स्त्री कनकमाला के कोई पुत्र नही है । इससे वह रात-दिन इसी चिन्ता में रहती है वह उसे ही यह पुत्र दूगा ।

कालसवर विद्याधर उस बालक को पुत्रवत समझकर मेघकूट नगर मे अपने घर ले गया और अपनी पत्नी को देते हुए कहा, "प्रिये ! तुम्हें देव ने यह पुत्र दिया

मालव
की प्र

है। लालन-पालन करके अपनी अभिलाषा पूरी करो।" कनकमाला ने प्रद्युम्नकुमार को ले लिया वह पाच धायो से पाला जाने लगा। कालसवर ने अपने घर में पुत्र-जन्म का उत्सव किया। लोगो में यह प्रसिद्धि की कि मेरी स्त्री गूढ-गर्भा थी। आज पुत्र प्रसव हुआ।

थोडी ही देर पश्चात् रुक्मिणी ने श्री कृष्णजी से प्रद्युम्नकुमार को मागा। उन्होने कहा "प्रिये ! यह क्या कहती हो। मैंने तो तुम्हें उसी समय दे दिया था।" रुक्मिणी ने कहा "स्वामिन! यह हसी का समय नही है मुझे अपना प्राण प्रिय पुत्र दीजिये।" कृष्ण ने कहा "भद्रे ! मैं क्या करू मैंने तो तुम्हें दे दिया था।" ऐसी देव माया देखकर महा राज कृष्ण भी धैर्य न रख सके। वे समझ गये कि रानी को पुत्र नही मिला है। हाय, कहा गया मेरा सर्वस्व ! क्या मैं अपने ही से स्वयमेव लुट गया। श्रीकृष्ण को इस प्रकार विलाप करते देख रुकिमणी भी समझ गई कि ये हसी नही करते हैं। किसी देव न हमें छल लिया है।

राणी रुक्मिणी पुत्र वियोग से अचेत हो गई। दासियो ने उसे शीतलोपचार करके सचेत किया। वह विलाप करने लगी। "रे रे दुष्ट देव मैंने तेरा क्या अपराध किया जो मुझे पुत्र वियोग का महान दु ख अनुभव करना पडा। हा देव! मुझे उत्कृष्ट निधान देकर क्यो छीन लिया। यदि तुम्हें मुझे दु ख ही देना था तो जन्मते ही मुझे क्यो न मार डाला ! मैंने पूर्व-जन्म में ऐसा क्या पाप किया था जिससे यह परिणाम मिला। मैंने ऋषि मुनियो को सताप दिया होगा। किसी को मिथ्या कलक दिया होगा, या पराई निन्दा की होगी या पराये धन का हरण किया होगा, या चीटियो के बिल्हर में उनका विनाश करने के लिये उष्ण जल डाला होगा, या पक्षियो के घोसलो को तोड कर उनको उनके बच्चो से वियोग कराया होगा या किसी गाय को वछडे से वियोग कराया होगा। अवश्य ही किसी न किसी भयकर अन्तराय का फल मुझे भोगना पडा है। इस प्रकार विलाप करते-करते वह पागल की तरह प्रलाप करने लगी। सारे नगर में कुमार के हरण से हा हाकार छा गया। सब यादव लोग दु खी हुये। नगर में हर्ष था तो एक मात्र सत्यभामा को। सो भी भविष्य में अपने पुत्र के विवाह की महत्त्वकाक्षा का ! पाठकगण । इसमें इसमें सत्यभामा का कोई दोष नही है "सौत मिट्टी की भी बुरी" इस लोकोक्ति अनुसार वहा एक दूसरे के प्रति सहानुभूति का नही होना स्वाभाविक ही है।

श्रीकृष्ण, बलभद्र, आदि इस विषय में विचार करने लगे कि किसी दुष्ट देव या विद्याधर ने कुमार का हरण किया है। इतने ही में देश विदेश में भ्रमण करने वाले नारद मुनि यादव-सभा में आये। श्रीकृष्ण

ने उन्हे सत्कारपूर्वक नस्मकार कर बैठने को आसन दिया। ऋषि ने बैठते ही पूछा पुरुषोतम ! आज तुम्हारा मुख-कमल तज विहीन क्यो दिखता है ? किस चिन्ता में व्यग्र हो?" वासुदेव ने उत्तर दिया "महर्षि ! क्या बताएं, रुक्मिणी एक मात्र प्यारे पुत्र प्रद्युम्नकुमार को किसी दुष्ट देव या विद्याधर ने हरण कर लिया है आप समस्त भूमण्डल पर विचरण करने वाले हैं, कहिये कुमार कहां मिलेगा?" नारद बोले "वासुदेव ! इस भरतखण्ड में आगे तो सशयछेदक अहमत्ता मुनी थे, किन्तु वे तो हाल ही में मोक्ष सिधारे। अब महाविदेहक्षेत्र जाकर विरहमान तीर्थंकर श्री सीमधर स्वामी से यह वृत्तान्त पूछकर तुम्हारा सन्देह दूर करूगा।

इसी भरतक्षत्र की पूर्व दिशा में महाविदेह क्षेत्र है। वहा के पुष्कलावती विजय में भगवान श्री सीमधर प्रभु विचर कर भव्य जीवो को प्रतिबोध दे रहे हैं। देवो के रचे हुए समवसरण में करोडो प्राणियो के समक्ष तीर्थकर भगवान मधुर ध्वनि देशना-उपदेश दे रहे थे उसी समय नारद वहा पहुचा। नारद विनय और भक्ति सहित प्रभु को वन्दना करके बैठ गया। नारद ने कहा "प्रभो ! श्री कृष्ण वासुदेव के पुत्र प्रद्युम्न कुमार का किने अपहरण किया यह सशय दूर कीजिये। प्रभु ने फरमाया "पूर्व वैर के कारण से धूमकेतु नामक देव ने प्रद्युम्नकुमार का हरण कर के वैतढ्या पर्वत पर लेजाकर फैंक दिया। किन्तु वह पुण्यात्मा बालक न मरा। उसी समय कालसवर नामक विद्याधर वहा आकर उस बालक को अपने घर ले गया और अपनी स्त्री कनकमाला को दे दिया। अब वह कुमार उसी माता के पास सुखपूर्वक रहता है" नारद ने कहा "स्वामिन् ! उस देव का कुमार से क्या द्वेष था ? कृपया उसका पूर्व भव सुनाइये" प्रभु ने कहा "हे नारद इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में मगध नामक एक देश है। उस देश में शालिग्राम नाम का एक गाव है। उस गाव के पास मनोरम उद्यान में सुमना नामक यक्ष का स्थान है। वहा पर सोमदेव नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी भार्या अग्नि की कुक्षि से अग्निभूति और वायुभूति नामक दो बालक हुए। वे बालक १४ विद्या सम्पन्न और रूप-गुणयुक्त थे। उन्होने वाद में अनेक धर्मावलम्बियो को जीत लिया था। इससे उन्हें अभिमान हो गया था। एकदा नन्दीवर्द्धन नामक ज्ञानी मुनिराज वहा आकर समोसरे समक्ष नागरिक जन उपदेश सुनने के लिये आये। मुनि की देशनाउपदेश सुनकर सब लोग जैन धर्म की प्रशसा करने लगे। यह प्रशसा सुनकर अग्निभूति वायुभूति सहन न कर सके वे दोनो आकर मुनि से कहने लगे "अरे मुण्ड ! क्यो वृथा बकवाद करता है ? हमारे से शास्त्रार्थ

कर।" मुनि ने कहा "अहो विप्रो ! तुम लोग कहां से आय।" दोनों भाइयो ने कहा "शालिग्राम से।" मुनि ने कहा "मै यह नही पूछता हू। मैं पूछता हू कि तुम किस भव से यहा आये। ऐसा सुनकर वे दोनों सम्यक्ज्ञान का अभाव होने से निरुत्तर हुये। मुनि ने कहा "तुम्हारे पूर्व भव का वृत्तान्त श्रवण करो।

"तुम लोग पूर्व भव में मासभक्षी शृगाल थे। किसी हालिक के क्षेत्र में अधिक आहार करने से तुम दोनो मर गये। हाली ने अपने खेत में मरे हुए शृगालो को देखा। वह हाली काल धर्म पाकर अपनी ही पुत्र वधु की कुक्षि से उत्पन्न हुआ। उसे पूर्व भव स्मरण होने से वह सोचन लगा कि अपने पुत्रो को पिता और अपनी पुत्र-वधु को माता कैसे कहा जाय ? अत वह मूक वन गया और सव कुछ समर्थ होने पर भी वोलता नही है। यदि प्रतीति करनी हो तो उस वालक को यहा लाओ। हमारे वचनों मे वह वोलन लगेगा। सभा में उपस्थित कुतूहलप्रिय लोगो ने वालक को वुलाया। मुनिराज ने उसे समझाया—मनुष्य भव पाकर चुप रहने से काम कैसे चलेगा ? लज्जा छोडकर वोलो। यह ससार नाटक है। नटुवे की भाति यह जीव विविध वेप धारण करता है। अपने-अपने कर्मो के प्रभाव से पुत्र पिता और वहू का माता हो जाना कोई आश्चर्यजनक नहीं।

"मुनिराज के वचनों से वह मूक वालक वोलने लगा। उसने पूर्व जन्म की वातें वतलाकर लोगो को आश्चर्य में डाल दिया। लघुकर्मी हाली और दूसरे भी वहुत से व्यक्ति प्रतिवोध पाकर दीक्षित हो गये। मुनिराज की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। मानभ्रष्ट विप्र रात्रि के समय मुनिराज को मारने के लिए आये। ज्योंही तलवार निकाली, यक्ष ने उन्हें स्तम्भित कर दिया। लोग एकत्रित होकर उन्हें धिक्कारने लगे। माता-पिता आकर आक्रन्द करते हुए पुत्रों को छोडने के लिये प्रार्थना करने लगे। यक्ष ने कहा—दीक्षा लेना स्वीकार हो तो छोडू। अन्त में चारित्र पालन में असमर्थ होने के श्रावक धर्म स्वीकार करने पर यक्ष ने उन्हे छोड दिया। वे दोनों भ्राता निरतिचार श्रावक धर्म पालन कर छ पल्योपम आयुष्य वाले देव हुए। दोनों भ्राता स्वर्ग से च्यव कर गजपुर नगर में अरहदास के यहा पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। वडे भ्राता का नाम पूर्णभद्र और छोटे का नाम मणिभद्र था। वे दोनों वडे विचक्षण और शुद्ध श्रावक धर्म पालन करने वाले थे। आचार्य श्री महेन्द्र के पधारने पर अरहदास ने मुनि-व्रत स्वीकार कर लिया। एक दिन दोनों भ्राता गुरु वन्दनार्थ जा रहे थे तो मार्ग में एक

चाण्डाल और एक कुतिया को देखकर उनके मन में स्नेह उत्पन्न हुआ। उन्होंने गुरु महाराज से इसका कारण पूछा तो मुनिराज ने कहा—तुम्हारा पूर्व भव का पिता सोमदेव मर कर सखपुर में जितशत्रु नामक छत्रपति राजा हुआ और अग्निला सोमभूति ब्राह्मण की प्रिया रुक्मणी हुई। एक वार रुक्मिणी ने राज्यागण में आने पर उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर राजा ने सोमभूति को मिथ्यादोषारोप कर निकाल दिया और रुक्मिणी को अपने अन्तःपुर में रख लिया। एक हजार वर्ष तक रुक्मिणी के साथ सुख भोग कर जितशत्रु राजा नरकगामी हुआ। वहा तीन पल्योपम की आयु पूर्ण कर किसी वन में हरिण हुआ। वहा धीवर द्वारा मारा जाकर मनुष्य और फिर हाथी हुआ। उसने जाति-स्मरण द्वारा अपना पूर्व वैभव देखा और पश्चाताप पूर्वक अनशन स्वीकार कर लिया। अठारह दिन निराहार रह कर वह तीन पल्योपम की आयुष्य वाले देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहा से च्यव कर जितशत्रु का जीव कर्मवश चाण्डाल हुआ और रुक्मिणी भी भव भ्रमण करती हुई इस भव में कुतिया हुई है। पूर्व भव के माता-पिता होने से तुम्हारे चित्त में इनके प्रति स्नेह उत्पन्न हुआ है। दोनों भ्राताओं ने जातिस्मरण से अपना पूर्व भव देखा और जाकर माता पिता को प्रतिबोध दिया। चाण्डाल ने वैराग्य पाकर मास सलेखना की और नन्दीश्वर में देव हुआ और कुतिया मर कर के राज कन्या हुई। पूर्णभद्र और मणिभद्र ने एक वार फिर गुरु महाराज से पूछा कि वे दोनों मर कर कहा गये हैं? मुनिराज ने कहा एक तो देव हुआ है और दूसरी यहा राजकन्या हुई है। दोनों भ्राताओं ने राजकन्या को प्रतिबोध दिया। वह सयम लेकर देव-गति को प्राप्त हुई। दोनों भ्राता निरतिचार श्रावक धर्म पालन कर प्रथम देव लोक में देव हुए। वहा से च्यव कर गजपुर नगर में विश्वकसेन राजा के यहा मधु और कैटभ नामक पुत्र हुए। नन्दीश्वर देव भी भव भ्रमण करता हुआ वटपुर का स्वामी कनकप्रभ राजा हुआ। कुतिया का जीव उसकी चन्द्रमा नामक रानी हुई। राजा विश्वकसेन ने मधु को राज्याभिषिक्त कर कैटभ को युवराज पद दिया। एक वार राजा मधु भीम पल्लीपति को जीतकर कनकप्रभ के यहा वटपुर आया। राजा कनकप्रभ ने मधु को भोजनादि से सत्कृत कर मणि, माणिक, हाथी, घोड़े भेट किये पर मधु उसकी पत्नी चन्द्राभा के लावण्य पर मुग्ध हो गया

और न देने पर कनकप्रभ को पराजित कर मधु उसे जबरन ले गया। रानी के विरह में कनकप्रभ पागल हो गया और सारा राजपाट छोडकर गली गली भटकने लगा।

एक बार पागल कनकप्रभ भटकता हुआ गजपुर आया। चन्द्रामा ने उसे भटकते देखकर मन में सोचा मैं ने वडा अनर्थ किया। एक वार राजा मधु ने विलम्ब से आकर चन्द्राभा के समक्ष परदारिक को दण्डित करने की वात कही। रानी ने कहा परदारिक तो पुज्य है स्वय अपनी ही वात सोचिये। इसी समय कनकप्रभ अकस्मात गली से जा रहा है था। जिसे चन्द्राभा ने सकेत से दिखाया। राजा मधु उसे देख कर वडा पश्चाताप करने लगा। मुझ पापी को धिक्कार है जिसने लम्पटतावश यह दुष्कृत्य किया इन तुच्छ सासारिक सुखो के पीछे परभव में दुर्गति का द्वार खोला। इस प्रकार वैराग्य वासित होकर भ्रातुष्पुत्र को राजपाट सौप कर युवराज कैटभ के साथ विमलवाहन गुरु के पास दीक्षित हो गया। दोनो भ्राता हजारो वर्ष र्षन पर्यन्त निर्मल चारित्र पालन कर अनशस आराधना पूर्वक सातवें स्वर्ग गये पागल कनकप्रभ तीन हजार वर्ष तक अनेक दुख भोगते हुए मर कर धूमकेतू ज्योतिषी देव हुआ। वहा से च्यव कर तापस हुआ और तपश्चर्या के प्रभाव मे वैमानिक देव हुआ। पर मधु के महर्द्धिक होने के कारण उसे वदला लेने का अवसर नही मिला वहा से च्यव कर वह मनुष्य भव करके पुन धूमकेतु देव हुआ। इसी समय मधु का जीव सातवें देवलोक से विवर कर श्रीकृष्ण के घर प्रद्युम्नकुमार के रूप में जन्मा। धूमकेतु उसे देखकर पूर्व भव के वैर वश अपहृत कर ले गया।

नारद ने पूछा— भगवन्! अव रुक्मिणी को कव पुत्र मिलाप होगा? सीमधर स्वामी ने कहा —सोलह वर्ष पश्चात् सव वातें यथा स्थित होगी।" नारद, प्रभु की स्तुति कर प्रद्युम्नकुमार को देखता हुआ द्वारिका पहुचा। यादव लोक चातक की भाति नारदमुनि की वाट देख रहे थे। नारद के मुख से सारा वृतान्त श्रवण कर सव लोग अत्यन्त प्रमुदित हुए। रुक्मिणी ने हर्ष से रोमाचित होकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सीमधर स्वामी को नमस्कार किया।

प्रद्युम्नकुमार, कालसवर विद्याधर के यहा वढ रहा था। जव वह तरुण-वय प्राप्त हुआ तो उसके अद्भुत रूप-लावण्य को देखकर कनकमाला मुग्ध हो गई। कर्म की गति

विचित्र है, जिस बालक को पुत्रवत् पालन कर वडा किया उसी के प्रति आसक्त होकर वह सोचने लगी---जिस वृक्ष को पोप कर वड़ा किया उसक मधुर फल कौन नही खाता ? यदि मैंने इसके साथ सुख नही भोगा तो जीवन ही व्यर्थ है। उस कामान्ध ने लज्जा त्याग कर कुमार से कहा---मैं तुम्हारी माता नही हू । तुम मुझे स्वीकार करो। मैं विद्याधर गौरी-वश की पुत्री हू । अत गौरी विद्या तथा पति द्वारा प्राप्त प्रज्ञप्ति विद्या मैं तुम्हें दूगी । फिर उसन कुमार की उत्पत्ति का सारा वृत्तात वतलाया । कुमार ने कहा---"पहले तुम मुझे विद्या दो, मैं तुम्हारी वात मानूगा।" कनकमाला ने कुमार को विद्या दी । कुमार ने उससे कहा---"एक तो तुम मेरी मा हो और अब गुरुणी भी हो गई । अत मेरे द्वारा दुष्कर्म की आशा ही मत रखो। भविष्य में ऐसी वात मुख पर भी नही लाना।"

कनकमाला की मनो इच्छा पूर्ण न होने पर वह क्रुद्ध हो गई पर उसे हाथ मलने के सिवा कोई उपाय नही था। प्रद्युम्नकुमार सक्लिष्ट वातावरण से क्षुब्ध होकर वन में चला गया। कनकमाला ने पीछे से अपने अग को स्वय विदीर्ण कर वस्त्र फाड डाले और केश पाश खोलकर जोर-जोर से पुकारने लगी। पति, पुत्र और परिजनो के एकत्रित होने पर उसने प्रद्युम्नकुमार के अत्याचार की करुण पुकार की। कालसवर ने प्रद्युमनकुमार का पीछा किया उनके पुत्र ससैन्य आगे पहुचे। प्रद्युम्नकुमार ने विद्या के वल से सग्राम में सवको परास्त कर दिया। जब स्वय कालसवर आगे आया तो कुमार ने पिता के साथ युद्ध करना अनुचित जानकर सारा वृत्तान्त कह दिया। कालसवर, त्रियाचरित्र से अवगत होकर शान्त हो गया। इसी समय नारद मुनि वहा आ पहुचे । उन्होंने प्रद्युम्नकुमार से कहा तुम्हारी माता श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणी है और सत्यभामा से हठ की वात व भानुक के विवाह की सारी वातें वताकर द्वारिका चलने के लिए प्रेरित किया। प्रद्युम्नकुमार तत्काल विमान में बैठ कर नारदमुनि और कालसवर के साथ द्वारिका नगरी के वाहर आ पहुचा।

प्रद्युम्नकुमार विमान को वाहर छोड़कर द्वारिका की शोभा देखने के लिए गया। नगर में भानुक के विवाह की चहल-पहल थी। सर्वत्र वाजिन्त्र वज रहे थे, वर घोडे पर चढी कन्या को प्रद्युम्नकुमार हरण कर लाया और देव विमान में लाकर रखा। नारदमुनि ने उसे यह कह कर आश्वस्त किया कि, ये श्रीकृष्ण के पुत्र हैं, तुम निर्भय रहो। प्रद्युम्नकुमार ने वानर रूप धारण करके माली से उद्यान के फल मागे। उसने कहा– 'भानुक के विवाह निमित्त रखे फल देने से सत्यभामा रुष्ट हो जावेगी। फल न पाकर वानर ने क्रुद्ध होकर तत्काल वाटिका विध्वस्त कर डाली। फिर अन्य

रूप धारण कर सारे नगर में सिंह की भांति निर्भय घूमने लगा। उसने सत्यभामा के जल व घास के भण्डार को नष्ट कर डाला। इसके बाद सौदागर के रूप में एक घोड़ा बेचने के लिए लाया, भानु परीक्षार्थ उस पर बैठ कर दौड़ाने लगा तो वह उल्टे मुंह गिर कर लोगों में हंसी का पात्र हुआ।

अब प्रद्युम्नकुमार ने ब्राह्मण का रूप बनाया और हाथ में पचांग लेकर सत्यभामा के यहां गया। उसने कुब्जा दासी को एक दम स्वस्थ और लावण्यवती बना दिया। दासी ने भोजन के निमित्त सत्यभामा के महल में पधारने की प्रार्थना की। विप्र को बाहर छोड़कर दासी जब सत्यभामा के पास आई तो उसके दिव्य रूप को देखकर वह उसे पहचान न सकी। फिर कुब्जा दासी द्वारा शक्तिशाली ब्राह्मण के आने की बात सुनकर उसे आमन्त्रित किया। सत्यभामा ने ब्राह्मण रूपधारी कुमार से निवेदन किया कि मुझे रुक्मिणी से अधिक लावण्यवती बना दीजिए। ताकि वह श्रीकृष्णजी के चित्त से उतर जाए। ब्राह्मण ने कहा—तुम्हारा रूप विस्मयकारी हो जाएगा पर उसके लिए विधि बहुत सी करनी होगी। सत्यभामा तो रुक्मिणी से स्पर्धा में उतरी हुई थी, "अर्थी दोषों न पश्यते' के अनुसार उसने कहा—आप जैसा कहेंगे वैसे ही करूंगी, आप शीघ्र विधि बताइए। ब्राह्मण ने उसका मस्तक मुण्डाकर सारे शरीर में मसी पुतवा दी और "हुड्बुड स्वाहा" मंत्र का जाप करने के लिए बैठा दिया। ब्राह्मण रूपी कुमार स्वयं भोजन करने बैठ गया और विवाह के निमित्त बने सारे लड्डू-पक्वान को शेष कर गया। दासी ने तंग आकर उसे उठा दिया।

प्रद्युम्नकुमार ने ब्राह्मण वेश त्याग कर साधु का वेश धारण किया और रुक्मिणी के महल में जा कर निर्भयतापूर्वक श्रीकृष्णजी के सिंहासन पर बैठ गया। रानी रुक्मिणी उस समय चिन्तातुर बैठी हुई थी। उसने उठकर स्वागतपूर्वक वन्दन किया और प्रार्थना की कि यह देवाधिष्ठित श्रीकृष्णजी का सिंहासन है इस पर वे या उनके पुत्र ही बैठ सकते हैं अतः आप इस पर न बैठिए। साधु ने कहा—साधु के तपोबल और पुण्य प्रभाव से कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा। रुक्मिणी ने आने का कारण पूछा तो मुनि ने कहा—भिक्षार्थ आया हूं, सोलह वर्ष कठिन साधना में मां का दूध भी नहीं पिया। रुक्मिणी ने कहा—जैन शासन में वर्षी तप तो सुना गया है पर यह तो नया ही सुना। साधु ने कहा—अन्य चर्चा त्याग कर आहार देना हो तो दो। रुक्मिणी ने कहा—पुत्र की चिन्तावश रसोई ही किसने बनाई है? मुनि ने कहा—तुम्हें क्या चिन्ता है। उसने कहा—सीमंधर

स्वामी के वचनानुसार नारदमुनि ने सोलह वर्ष पश्चात् पुत्र मिलने का कहा था। मैं कुलदेवी को आराधना कर अपना मस्तक छेद करने को प्रस्तुत हुई तो उसने कहा—मरो मत, तुम्हारे आगन में अकाल में आम्र फलेगा, उसी दिन पुत्र मिलेगा। आज आम्र फल गया तो भी अभी तक पुत्र मिलाप नही हुआ। आप साधु लोग सर्वज्ञ पुत्र कहलाते है, लग्न देखकर वतलाइये। मुनि ने कहा—खाली हाथ नही पूछा जाता। रुक्मिणी ने कहा—आप जो कहें सो दू। मुनि ने कहा—खीर खाण्ड दो। रुक्मिणी ने अग्नि प्रज्वलित करने का पूर्ण प्रत्न किया पर साधु के प्रभाव से अग्नि नही जली। रुक्मिणी ने कहा—श्रीकृष्णजी के आरोगचे के मोदक दे सकती हू पर उन्हें हजम करना कठिन है। मुनि ने कहा—मुनि की लब्धि से सव भस्म हो जायेंगे। रुक्मिणी ने थाल भर कर लड्डू दिए जिन्हें मुनि-वेशी कुमार सव खा गया।

इधर मस्तक मुण्डित सत्यभामा ने वहुत से जाप किए परन्तु दूसरो का वुरा चाहने से अपना ही वुरा होता है। उसने थक कर कहा—मेरी दुर्दशा करने-वाला विप्र कहा गया? दासी ने कहा—सारे खाजा, लड्डू खाकर भी राक्षस की भांति अतृप्त ब्राह्मण वडवड़ करता हुआ चला गया। इसी समय सत्यभामा के पास विभिन्न खवरे आने लगी। किसी ने कन्या अवहृत होने की, किसी ने उद्यान ध्वस्त करने की तो किसी ने घास पानी खाने व कुमार के गिरने की वात कही। सत्यभामा के लिए यह जले पर नमक था। उसने चिढ कर कहा—"चुप्प रहो। पहले मुझे अपनी तो सुध लेने दो।

सत्यभामा ने सोचा मेरे में जो हुई सो हुई अव सौत का सिर मुडाऊ तो अच्छा हो। उसने दासी को पडला देकर रुक्मिणी के यहा केश लाने के लिए भेजा। दैव योग से रात्रि का सा अन्धेरा होगया और दासियो के केश से पड़ला भर गया। दासिया सव भग गईं। स्वामिनी की भान्ति दासिया हो गई तो सत्यभामा ने नापित को रुक्मिणी के पास भेजा कि वे जवरदस्ती रुक्मिणी के केश ले आवे। उनकी भी वही दुर्दशा हुई जो सत्यभामा ने कृष्ण-वलभद्र से पुकार की कि आप लोगों की साक्षी से शर्त होने पर भी रुक्मिणी केश नही दे रही है। श्रीकृष्ण ने कहा—तुमने मुण्डन करा लिया तो सव कुछ हो गया। सत्यभामा ने कहा—मायावीपन छोडकर अपने वचनो को स्मरण करें। श्रीकृष्ण ने वलभद्र को रुक्मिणी के पास भेजा। उन्होंने जाकर देखा तो वहा श्रीकृष्ण स्वय बैठे मिले। वलभद्रलज्जित होकर लौटे और श्रीकृष्ण को उपालम्भ दिया तो श्रीकृष्ण ने कहा—मैं गया ही नहीं, आप विश्वास करें।

नारद मुनि रुक्मिणी के महल में आये और मुनि से कहा अव अपना रूप प्रकट

करो। प्रद्युम्नकुमार अपने प्रकृत रूप में प्रकट होकर माता के चरणों में गिर पड़ा। रुक्मिणी के आनन्द की सीमा न रही। वह, रोमाचित हो गई। उसका हृदय शीतल हुआ और हर्ष के अश्रु गिरने लगे। पुत्र प्रेम के अतिरेक मे उसके स्तनो से दुग्ध की धारा निकलने लगी। प्रद्युम्नकुमार ने कहा—मा, तुम चुप रहना, मैं एक कौतुक करता हू। वह रुक्मिण्मी को रथ में बैठाकर यह कहता हुआ निकला कि—श्रीकृष्ण और सब यादव मेरी यह स्पष्ट घोपणा सुन लें कि मै रुक्मिणी को ले जा रहा हू, किसी की शक्ति हो तो छुडा लेना। श्रीकृष्ण कुपित होकर सारग धनुप चढाए हुए आये और प्रद्युम्नकुमार को ललकारने लगे। प्रद्युम्न ने विद्यावल से श्रीकृष्ण की सारी सेना को भगा दिया। श्रीकृष्ण सोचने लगे कि यह क्या रहस्य है। इतने में उनकी दक्षिण भुजा फड़कने लगी। उन्होने बलभद्र से इसका कारण पूछा। नारदमुनि ने आकर प्रद्युम्नकुमार को पिता के साथ सग्राम करने का निषेध करते हुए श्रीकृष्ण को कहा कि पुत्र से युद्ध करने की कोई आवश्यकता नही है।

प्रद्युम्नकुमार पिता के चरणों में गिर पडा। सारे यादव-परिवार मे आनन्द की लहर दौडने लगी। बड़े भारी समारोह के साथ द्वारिका नगरी मे प्रवेशोत्सव हुआ। सर्वत्र नाच-गान और वाजिन्त्र वज रहे थे। सबके हृदय में अपार हर्ष था। केवल सत्य-भामा का हृदय विपादपूर्ण था। यद्यपि वह तद्‌भव मोक्षगामिनी और सती शिरोमणी होने पर भी मात्सर्यपूर्ण थी। कर्म की गति वडी विचित्र है।

रुक्मिणी ने नारदमुनि को नमस्कार करते हुए हार्दिक आभार माना। पितृ-तुल्य विद्याधर कालमवर को सतुष्ट करके स्वस्थान लौटाया। श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न-कुमार एक साथ पचास राज-कन्याओं से पाणिग्रहण कराया और गगनचुम्बी अट्टालिकायें दी। कुमार प्रद्युम्न आनन्द-पूर्वक सासारिक सुख भोगते हुए काल निर्गमन करने लगा।

प्रद्युम्नकुमार की उन्नति देखकर ईर्ष्या में सत्यभामा जल रही थी। वह एक दिन गाल पर हाथ रखकर अश्रुपात करते हुए अनाहार वैठी थी। श्रीकृष्ण ने उसे चिन्ता का कारण पूछा तो उसने कहा मुझे भी रुक्मिणी के जैसा पुत्र दो। श्रीकृष्ण ने उसे आश्वासन देकर हरिणेग-मेषी देव को अष्टम तप पूर्वक स्मरण किया। देव ने सब कुछ पुण्य से प्राप्त किया है। मुझे किस लिए स्मरण किया है? श्रीकृष्ण ने कहा—सत्यभामा ने हठ पकड रखा है कि मेरे भी रुक्मिणी के पुत्र जैसा पुत्र हो। देव ने एक मुक्ताहार देते हुए कहा कि यह हार जिसके कठ में स्थापित कर सासारिक सुख भोगोगे के उसी पुत्र

होगा। प्रद्युम्नकुमार को उसकी विद्या देवी ने यह सूचना दे दी। उसने रुक्मिणी से कहा—तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं हार का प्रपच करू। माता ने कहा—बेटा! मैं एक ही पुत्र रत्न से कृतार्थ हू। प्रद्युम्न ने कहा—यदि सत्यभामा के सुपुत्र हो जाएगा तो वह फिर तुम्हें दुख देगी। अत तुम जैसा कहो वैसे ही उपाय करू। रुक्मिणी ने कहा—जाम्बवती मुझे अत्यन्त प्रिय और सुख-दुख की साथिन है। कुमार ने उसका रूप साक्षात सत्यभामा जैसा बना दिया। वह श्रीकृष्ण के पास गई तो उन्होने उसके गले में हार पहना कर मनोवाछितपूर्ण किया। वह हर्षोल्लासपूर्वक वापस लौटी। और सत्यभामा जब कृष्ण के पास गई तो उन्होने कहा—पुन कैसे आगमन हुआ? स्त्रियो की विषय-तृष्णा असीम होती है। सत्यभामा ने कहा—प्रियतम! मैं तो आपके पास आयी ही नही शपथ-पूर्वक कहती हू। श्रीकृष्ण ने कहा—प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? फिर भी उन्हो ने उसे ऋतुदान से सन्तुष्ट किया। प्रद्युम्नकुमार ने उस समय भेरी बजाई जिससे श्रीकृष्ण कम्पायमान होगए। उन्होंने सत्यभामा से कहा—तुम्हारे पुत्र तो होगा पर वह भीरू होगा। प्रात काल जब श्रीकृष्ण रुक्मिणी के यहा गये और जाम्बवती को हार धारण किए देखा तो सारी बात का रहस्य खुला और उन्होने मन ही मन प्रद्युम्नकुमार के प्रपच को ताड लिया। श्रीकृष्ण ने जाम्बवती से कहा—प्रिये! तुम्हारे गुणवान पुत्ररत्न होगा। इसी अवसर पर कैटभ का जीव स्वर्ग से च्यव कर जाम्बवती की कुक्षी में आया। उसने सिंह स्वप्न साम्बकुमार को जन्म दिया। वह, चन्द्रकला की भाति दिन-दिन बढता हुआ प्रद्युम्नकुमार के सदृश ही गुण सम्पन्न हुआ। दोनो भ्राताओ मे परस्पर बडा प्रेम था और दोनो एक साथ क्रीडा करते हुए विचरण करते थे। तरुणावस्था प्राप्त होने पर श्रीकृष्ण ने साब को भी पचास स्त्रियो के साथ पाणिग्रहण कराया। साम्ब प्रद्युम्न दोनो भ्राता, माता-पिता को परमाल्हादक थे।

एक बार रुक्मिणी ने अपने भाई राजा रुक्मिणी के पास भोजकटक नगर मे दूत भेज कर प्रद्युम्नकुमार के लिये वैदर्भी की माग की। उसने कहलाया कि वैदर्भी स्वर्णमुद्रिका है और प्रद्युम्नकुमार अनमोल रत्न है, आर्य तुम स्वर्णकार बन कर दोनो को एक कर दो। मेरी यह अभिलाषा है। राजा रुक्मि इस माग से कुपित होकर कहने लगा—श्रीकृष्ण अहीर कुल का है, हम उत्तम कुल हैं। आगे रुक्मिणी को अपहृत कर लेगा, वह बात भी शल्य की भाति चुभ रही है। अपनी पुत्री को चाण्डाल को देना अच्छा पर यादव कुल में नही।

दूतों द्वारा अपनी बात न मानने का वृत्तान्त ज्ञात कर रुक्मिणी अन्य-मनस्क हो गई। प्रद्युम्नकुमार ने कहा—तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा व मामा को भी कष्ट नही दूंगा। तुम निश्चिन्त रहो।

साम्ब और प्रद्युम्न दोनों आकाश मार्ग से भोजकटक नगर पहुचे। उन्होने चाण्डाल का रूप करके नगर मे घूमना प्रारम्भ किया। वे स्वरीले कण्ठ से गीत गान करते और बीच बीच में वीणा-वशी बजाते थे। उनके अद्‌भुत रूप और दिव्य सगीत ध्वनि से मुग्ध जनता की बडी भीड़ लग जाती इसमें तो आश्चर्य ही क्या, देव विमान तक स्तम्भित हो जाते थे। उनका सगीत नाद विरहणियो को सतापकारी और सयोगिनियो को आनन्ददायक था। कोई स्त्री हार पिरोती हुई बीच में फेंक कर गायन सुनने दौडती, कोई पति को परोसती हुई बीचमें भागती, कोई पैर में मेंहदी मडाती हुई बिना सूखे ही भागती, किसी का धान्य चूल्हे पर जलता रहता, किसी के घड़े में का घृत ढल कर गिरता जाता, किसी की चुनडी जमीन पर लटकती रहती, किसी की अधगूथी वेणी और खुले केश थे, किसी के आधे वस्त्र पहने हुए थे। इस प्रकार वे राग आलाप करते कि दीपक राग से दीपक जल जाते और पचम राग से वृक्ष नवपल्लिवित हो जाते थे।

वैदर्भी ने गवैयों को बुला कर पिता के पास बैठे हुए सगीत सुना। फिर उन्हें पूछा कि तुम लोग कहा से आ रहे हो? उन्होंने कहा—हम स्वर्ग मे उतर कर द्वारिका नगरी में से यहा आये है। वैदर्भी ने कहा—कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्नकुमार को जानते हो? साम्ब ने कहा—ऐसे त्रैलोक्य प्रशसित पुरुषरत्न को कौन नहीं जानता? वैदर्भी मन ही मन प्रद्युम्न-कुमार के प्रति इतनी रागवती हो गई कि उसने अन्य से पाणिग्रहण न करने की प्रतिज्ञा कर ली। इसी समय राजा का हाथी आलान से छूटकर उपद्रव मचाने लगा। उसके पास जाकर वशवर्ती करने में जब कोई समर्थ न हुआ तो राजा ने उद्‌घोषणा कराई कि जो हाथी को पकड़ेगा उसे मनोवाछित दिया जाएगा। डोमवेशधारी साम्ब, प्रद्युम्न ने पटह स्पर्श किया और अपनी सगीत विद्या के बल से हाथी को वश में कर लिया।

राजा ने डोमों से कहा—मनोवाछित माग कर मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करो। उन्होंने कहा—हमारे घर मे रसोई करनेवाली नहीं है अत आपकी पुत्री वैदर्भी को हमें दो। राजा ने इस अयुक्त याचना से रुष्ट होकर उन दोनों को नगर से बाहर निकाल दिया।

प्रद्युम्नकुमार रात्रि के समय आकाश मार्ग से वैदर्भी के पास गया और रुक्मिणी के

नाम से लिखा हुआ पत्र दिया । जिस में लिखा था कि तुम वहु वनकर शीघ्र उसके साथ आना । कुमारी वैदर्भी स्वय प्रद्युम्नकुमार को आया ज्ञात कर अत्यन्त प्रमुदित हुई । दोनों ने तत्क्षण अग्नि को साक्षी में विधिवत् विवाह कर लिया । कुमार रात भर रह कर प्रात साम्ब के पास चला गया । वैदर्भी को धाय माता ने आकर नीद से जगाया । उसके कंकण व नवीन साडी पहिने हुए देखकर विवाहित होजाने की वात से राजा को अवगत कराया । राजाने क्रुद्ध होकर पुत्री को वहुत फटकारा और मन में पश्चाताप किया कि वैदर्भी को डोम को न देकर मैंने वचन भग किया। उसने तत्काल उन डोमो को वुलाया और उन्हें वैदर्भी को सुपुर्द कर दिया । उन्होंने कहा — तुम राज कन्या हो, सुकुमार हो, कैसे घर का काम करावेंगे इसीका हमें दुख है । वैदर्भी ने कहा— मेरे भाग्य की वात, जव पिता ही डोम को देता है तो दोष किसे दिया जाए ।

सब लोगों की साक्षी में दोनो भ्राता वैदर्भी को ले गये । नगर के वाहर देव-विमान सदृश महल की रचना कर उसमें आनन्दपूर्वक रहे । विविध प्रकार के वाजिन्त्रों द्वारा वत्तीस प्रकार के नाटक सगीत में वे आमोद-प्रमोद करने लगे ।

इधर क्षणिक आवेश मे आकर वैदर्भी को दे डालने के अविचारपूर्ण कार्य के लिये राजा को वड़ा पश्चाताप हुआ । वह नाना प्रकार से विलाप करता हुआ महान कष्ट अनुभव करने लगा । उसने प्रधान को भेज कर सुध ली तो साम्ब-प्रद्युम्न के स्वयं होने के शुभ-सम्वाद से राजा का हृदय अत्यन्त प्रमुदित हुआ । वह स्वय आकर भानजो से प्रेमपूर्वक मिला । प्रद्युम्नकुमार एवं वैदर्भी को आडम्वर के साथ घर वुलाकर उन्हें वहुत सा दत्त–दायजा दिया और वहुत सी सेना के साथ उन्हें द्वारिका की ओर विदा किया ।

साम्ब व प्रद्युम्न दोनों में भवान्तर की अपार प्रीति थी अतः दोनो भ्राता आनन्दपूर्वक क्रीडा करते हुए काल निर्गमन करने लगे ।

श्री कृष्ण की भविष्यवाणी के अनुसार सत्यभामा का पुत्र भीरुक वास्तव में ही भीरु था । साम्बकुमार का समवयस्क होने से साथ खेलते हुए वह वहुधा मार खाया करता था । श्रीकृष्ण ने जाम्बवती से कहा—तुम्हारे महावली पुत्र को समझाओ ताकि उपालम्भ न मिले । जाम्बवती ने कहा—मेरा पुत्र साम्व सीधा और सुकुमार है । श्रीकृष्ण ने कहा—सिंहनी अपने पुत्र को शान्त प्रकृति और सुकुमार कहती है पर वह नाद के द्वारा गजघटा को भवन कर देता है । वैसे ही तुम्हारे मन में साम्व है । यदि तुम्हें देखना हो तो

चलो मैं तुम्हारे लाल का स्वरूप दिखाऊ।

श्रीकृष्ण अहीर बने और जाम्बवती अहीरनी। जाम्बवती दही बेचने निकली। जहा उद्यान में कुमार खेलते थे उधर से निकलते हुए साब ने गाली देते हुए कहा—चलो, ग्वालिन मैं तुम्हारा गोरस ले कर तत्काल दाम चुकाता हूं। वह उसे जबरदस्ती देवकुल में लेजाकर बाहु में हाथ डालने लगा। पीछे से श्रीकृष्ण ने कहा—पापिष्ठ मा से ही नही टलते। साब तत्काल नौ दो ग्यारह हो गया। श्रीकृष्ण ने कहा प्रिये॥ देखलो पुत्र की करतूत। मेरे कहने से नही मानी अब तो स्वय अनुभव कर लिया।

दूसरे दिन जब कृष्णजी सभा में बैठे हुए थे तो हाथ में कील लेकर साम्ब आया। कृष्णजी ने पूछा यह कील किस लिये लाये? साम्ब ने कल की बात जो प्रकट करेगा उसके मुह पर मेख लगा ूगा। श्रीकृष्ण ने कुपित होकर उसे देश निकाला दे दिया। प्रद्युम्नकुमार ने अपनी प्रज्ञप्ति विद्या उसे दे दी जिससे वह आनन्दपूर्वक विचरण करने लगा।

प्रद्युम्नकुमार अब भीरुक को पीटने लगा। सत्यभामा ने रुष्ट होकर कहा—तुम यहा से चले जाओ। प्रद्युम्न ने कहा—माता जी मैं कहा जाऊ? सत्यभामा ने कहा—जाओ शमशान में जाकर बैठ जाओ। प्रद्युम्न ने कहा—बहुत अच्छा, लौटने की अवधि बताओ। सत्यभामा ने कहा—जब तुम्हें सावकुमार का हाथ पकडकर बुलाया जाय तब। यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार श्मशान में जा कर बैठ गया। सांबकुमार भी घूमता हुआ उसमे आ मिला। दोनो भ्राता विविध लीलायें करने लगे।

सत्यभामा ने भीरुक के विवाह के निमित ९९ कन्याओं को ठीक कर लिया था। वह एक और सुन्दर कन्या की शोध मे थी जिस से पूरी सौ पुत्र वधुयें हो जाए। प्रद्युम्नकुमार ने सत्यभामा को छकाने के लिए यह सुन्दर अवसर जानकर विद्यावल से स्वयं जितशत्रु राजा बना और साम्ब का रूप परिवर्तन कर लावण्यवती कन्या बना दिया और नगर के बाहर सैन्य परिवार के साथ जाकर डेरा डाल दिया। लोगों के मुख से सत्यभामा ने कन्या के रूप की प्रशसा सुनी तो सौ वी कन्या मिल जाने के हर्ष में वह स्वय गई। जितशत्रु रूपी प्रद्युम्न से उसने कन्या की याचना की। प्रद्युम्न ने कहा—इसे हाथ पकड कर स्वय ले चलो। और भीरुककुमार पाणिग्रहण के समय इसी के साथ हथलेवा जोडे (हस्तमेलापक करे) तो मुझे सम्बन्ध स्वीकार है।

सत्यभामा ने जितशत्रु की बात मान ली और कुमारी को हाथ पकड कर अपने घर ले आई। अवधि पूर्ण होने पर जितशत्रु भी साथ आगये। प्रद्युम्न के विद्यावल से सब लोग देख रहे थे कि सत्यभामा

उसे कन्या रूप में ही देख रही थी। विवाह के सारे विधि विधान सम्पन्न कर जब सौ कन्याओं के साथ भीरुक चौरी में बैठा तो शर्त के अनुसार साम्ब रूपी कन्या का बाया हाथ भीरुक के साथ मिला दिया और दाहिने हाथ से हस्तमेलापक परम्परा से निन्नाणवें कन्याओं से साब का विवाह हो गया। भीरुक कुमार का विवाह हो गया। सभी कन्यायें अपना विवाह साबकुमार के साथ हुआ देखकर जन्म कृतार्थ मानने लगी।

विवाह के अनन्तर कन्या पक्ष के सब लोग अपने-अपने स्थान चले गये तो साम्बकुमार ९९ सुन्दरियों को लेकर अपने घर आने लगा। भीरुक ने कहा — ये परिणीतायें मेरी है। पर सब लोगों ने साम्बकुमार को व्याहते हुए देखा था। अतः उसी की विजय हुई। सत्यभामा ने क्रुद्ध होकर कहा— रे साम्ब। तुझे किसने बुलाया? साम्ब ने कहा— माता जी। आपही ने तो मुझे लाकर पाणिग्रहण करवाया है।

निन्नाणवें सुन्दरियों के साथ साम्बकुमार जम्बुवती के घर आया और उसकी सर्वत्र जय जयकार हुई।

इस प्रकार साब प्रद्युम्न की अनेक प्रकार की लीलायें ग्रन्थान्तरों में पाई जाती है।

एक ओर जगत्पूज्य श्री नेमिनाथ तीर्थंकर अपने साधुओं के परिवार सहित द्वारिका के नन्दन उद्यान में पधारे। कोटि देव उनकी सेवा में उपस्थित थे। नव स्वर्ण कमलों पर चरण धरते हुए चल रहे थे। उनके आगे सहस्र योजन ऊंचा महेन्द्रध्वज सुशोभित था। देवों ने समवशरण की रचना की। छत्रत्रय, सुरदुंदुभि, चामर, सिंहासनादि अष्ट प्रतिहार्य सुशोभित प्रभु के दर्शनार्थ चारों निकाय के देव व मानव मेदिनी उमड़ पड़ी। वनपालक से बधाई पाकर श्रीकृष्ण अपने अन्तःपुर परिवार सहित प्रभु वन्दनार्थ पधारे। भगवान ने धर्मोपदेश दिया। जिसमें मानव भव दुर्लभता, शरीर की अनित्यता और संसार का स्वरूप बतलाते हुए प्राणियों को धर्माराधन करने की प्रेरणा दी।

श्रावक धर्म, साधु धर्म व सम्यक्त्वादि की आत्माभिमुखी व्याख्या श्रवणकर अनेक जीव प्रतिबोध पाये।

गौतम, समुद्रसागर, गम्भीर, स्तिमित, अचल, कपिल्लल, अक्षोभ, प्रसेनजित, विष्णु ये दस धारिणी और अन्धक के पुत्र आठ-आठ रानियों को छोड़कर दीक्षित हुए। इन्होंने बारह प्रतिमा, गुणरत्न संवत्सर तप धारण कर ११ अंग पढे व १२ वर्ष की पर्याय पूर्ण कर एक मास की संलेखना से शत्रुंजय तीर्थ पर निर्वाण प्राप्त हुए।

अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवन्त, अचल, धरण, पूरण और अभिचन्द्र नामक ८ कुमार यादव वश विभूषण अधक व धारिणी के पुत्रो के सोलह वर्ष पर्याय व्रत धारण का उल्लेख अन्तगडदशाग में है। जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेण, वारिषेण जो वसुदेव धारिणी के अगज थे, ५० स्त्रियों को छोड कर दीक्षित हुए बारह अग पढ़कर सोलह वर्ष बाद अन्त कृत केवली हुए। इसी प्रकार समुद्र-विजय, शिवादेवी के नन्दन सत्यनेमि, दृढ़नेमि भी निर्वाण प्राप्त हुए। वैदर्भी की मा, प्रद्युम्न का पिता (कालसवर) अनिरुद्धकुमार भीजालि की भान्ति मोक्ष गये। वसुदेव धारिणी के पुत्र सारण, दुमह, कूवर, दारुक और अन्तधृष्टि पचास स्त्रियों का त्याग कर प्रव्रजित हुए और बीस वर्ष के दीक्षा पर्याय में चौदह पर्व अध्ययन कर मोक्ष गये। सारण की भान्ति धारिणी- बलभद्र के पुत्र सुमुख-कुमार भी निर्वाण पद पाये।

श्रीकृष्ण—ढढणा के पुत्र ढढणमुनि ने अखेदरूप से अलाभ परीषह को जीत कर कर्मक्षय किये और भगवान नेमिनाथ द्वारा प्रशसित हुए। अनिकयशादि देवकी के छ पुत्र जो भद्दिलपुर में सुलसा-नाग के यहा बडे हुए थे, लघु वय मे प्रभु के पास दीक्षित हो भवसमुद्र का पार पाया। देवकी के लघु पुत्र गजसुकुमारमुनि उसी दिन दीक्षा लेकर श्मशान में कायोत्सर्ग रहे और सोमिल स्वसुर द्वारा मस्तक पर अग्नि प्रज्वलित किये जाने पर अन्त कृत केवली हुए। राजिमती द्वारा अकुश प्राप्त रथनेमि जो भगवान के भ्राता थे, मेरु की तरह निश्चल मन करके निर्वाण प्राप्त हुए।

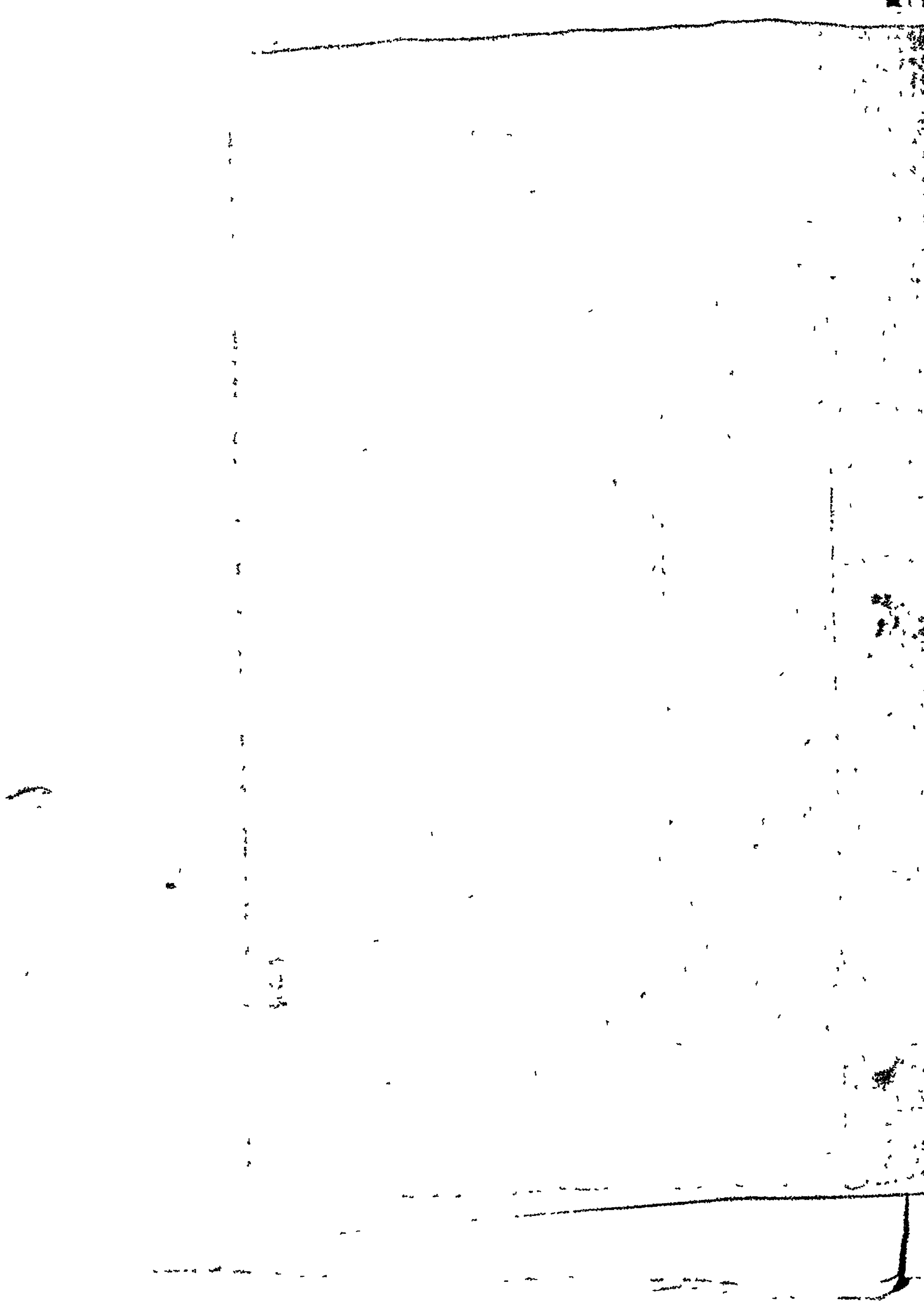
उग्रसैन राजा की पुत्री राजिमती ने भगवान नेमिनाथ की अष्ट भवो की प्रीति सफल कर उन्ही के कर कमलो से प्रव्रजित होकर भगवान से पहले मोक्ष गामी हुई।

भगवान नेमिनाथ से श्रीकृष्णजी ने पूछा भगवन्। यह देव निर्मित द्वारिकानगरी शास्वत रहेगी या नही ? प्रभु ने कहा द्वीपायन ऋषि इसे जलाकर भस्म कर देगा और इसका निमित कारण 'मदिरापान' का व्यसन होगा। कृष्णजी ने भयभीत होकर कहा —प्रभो। मुझे दीक्षित कर इस सकट से बचाइये। भगवान ने कहा—सभी वासुदेव नियाणबद्ध होने के कारण दीक्षा नही ले सकते, तुम शुद्ध सम्यक्त्व पालन करो। तदनन्तर श्रीकृष्ण जी ने द्वारिका में ३ बार उद्घोषणा करवा दी कि द्वारिकानगरी का विनाश अवश्यभावी है। अत जिन्हें दीक्षा लेनी हो, माता, पिता, पुत्र, भगिनी, पुत्री आदि सभी परिवार भगवान नेमिनाथ के पास जाकर दीक्षित होजाये। मेरा यह आदेश है। मै उनकी दीक्षा का उत्सव करूंगा व पीछे घर का निर्वाह भी करूंगा।

श्रीकृष्णजी की इस उद्घोषणा को सुन कर रानी पद्मावती, गौरी, गान्धारी, जम्बुवती, रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा, सुसोमा, नामक उनकी आठों अग्र महिषियों ने दीक्षा ले ली। वे ग्यारह अंगों का अध्ययन कर बीस वर्ष के दीक्षा पर्याय का पालन कर एक मास की सलेखना से निर्वाण प्राप्त हुई। मूलश्री, मूलदत्ता नामक सावकुमार की दो स्त्रिया व पद्मावती भी नेमिनाथ प्रभु के पास दीक्षित हो गई। इस प्रकार अनेक प्राणी ससार समद्र से पारगामी हुए।

जगद्गुरु श्री नेमिनाथ प्रभु की वाणी से वैराग्य वासित होकर साव व प्रद्युम्न कुमार ने उनसे दीक्षा देकर भव समुद्र से तारने की प्रार्थना की फिर माता-पिता से आदेश लेकर दीक्षित हो गये। वे निर्मल बुद्धि वाले और व्युत्पन्न तो थे ही। अल्प समय में शास्त्राभ्यास कर लिये। पाच समिति तीन गुप्ति को चारुतया पालन करते हुए २२ परिषह सहन करते थे। उष्णकाल में तप्तशिला पर आतापना लेते व शीतकाल की रात्रि में कायोत्सर्ग कर शीतपरिषह सहते। कठिन तपश्चर्या के साथ द्वादश प्रतिमा वहन कर गुणरत्नादि तप किये। आहार के ४२ दोष टालते। श्वासोश्वास की क्रिया के अतिरिक्त सभी कुछ सदगुरु के अधीन था। वे साव, प्रद्युम्न मुनि क्षमासमुद्र, बहुश्रुत और जितेन्द्रिय होने के साथ-साथ अप्रमत्त दशा में विचरते थे। सोलह वर्ष पर्यन्त निरतिचार सयम साधना करके विमलगिरि शृंग पर निर्माणपद प्राप्त हुए।





प्राचीन हरियाणवी काव्य "कूकड़ा मंजारी चउपई"

अगरचन्द नाहटा

अपने अन्वेषण के कार्य के सिलसिले मे जब मैं पूना स्थित 'भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' के पुस्तकालय मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रथो की खोज कर रहा था तो मुझे हरियाणा प्रदेश के लाटौहु गाव के कवि वल्ह द्वारा रचित एक काव्य ग्रथ 'कूकडा मजारी चउपई" मिला। कवि वल्ह पाल के पुत्र थे ऐसा सकेत उक्त रचना के १७-वें छन्द के "पाल पूत वल्ह" शब्दो मे मिलता है। इसके अतिरिक्त कवि के बारे मे हमे और किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त नही होती।

६ पत्रो की यह प्रति सवत् १६६२ आश्विन शुक्ला चतुर्थी, शुक्रवार, को नागपुर याने नागौर मे सम्राट अकबर के राज्य मे लिखी गई—"सम्वत् १६६२ वर्षे अश्विनि मासे शुक्ल पक्षे चतुर्थ्या तिथि शुक्रवार श्री नागपुर मध्ये लिखत ॥ पातिसाह श्री अकबर राज्ये ॥श्री॥" लिपि जैन शैली की है। सम्भवत यह प्रति राजस्थान से ही भण्डारकर इन्स्टीट्यूट मे पहुँची है। यद्यपि इस रचना मे निर्माण काल का उल्लेख नही है पर सवत् १६६२ मे लिखित होने से इससे पूर्व की रचना है यह तो निश्चित है ही। परन्तु इसकी भाषा शैली को देखते हुए मुझे यह १६ वी शताब्दी की रचना लगती है। हरियाणा प्रदेश राजस्थान से भी मिला-जुला है इसी लिए इस रचना की भाषा हिन्दी होने पर भी राजस्थानी से प्रभावित है। वास्तव मे उस समय राजस्थानी और हिन्दी मे इतना अन्तर नही होता था। १६ वी शताब्दी की हरियाणा प्रदेश की भाषा का इस रचना से भली-भाँति परिचय मिल जाता है।

इस रचना का विषय भी बडा विचित्र है। वल्ह कवि ने विनोद के लिए ही इसकी रचना की है। प्रारम्भ मे गणपति, फिर सरस्वती-शारदा और अपने मात-पिता को नमस्कार किया है। पहले और अन्तिम पद्य मे कवि ने अपना नाम भी दे दिया है। बीच मे भी एक-दो जगह उसने अपना नाम दिया है। अन्तिम पद्य मे पिता के नाम और अपने निवास स्थान का भी उल्लेख किया है :—

प्रथम कि प्रणमउ गणपति देव, काज सिद्धि जिउ फुरइ निषेध।
गवरि शकर सुत उतपति जास, कहइ वल्ह पडित कउ दास ॥१॥

हरियाणउ लाटौहु गाउ, पालपूत वल्हा इसु नाउ ॥१७७॥
मजरी तणी सो करति करइ, जिणि छेदी लीयउ तिणि ही उतरइ ॥१७८॥

प्रस्तुत रचना १७८ पद्यो मे है। प्रधानतया चौपाई छद मे रचे जाने के कारण ही इसका नाम "कूकडा मजारी चउपई" रखा गया है। वैसे बीच मे कुछ दोहे और वस्तु-छद भी हैं। सस्कृत का भी एक श्लोक पाया जाता है। मगलाचरण के तीन श्लोकों के बाद कथा प्रारम्भ होती है और जैसा कि रचना के नाम से स्पष्ट है, इसमें एक कुकड़े और बिल्ली की कहानी है। कवि ने इसमे 'कहानी' शब्द का प्रयोग भी दो-तीन जगह किया है जो वास्तव मे बहुत ही महत्वपूर्ण है। क्योकि प्राचीन रचनाओ मे 'कहानी' शब्द का

[illegible] विद्यार्थी के लिए जानने [illegible]

[illegible] प्रयोग इस प्रकार मिलता है :—

[illegible] दूरी [illegible] जानि । १०६ ।

[illegible] करहि । १७५ ।

[illegible] भी इस रचना में दी गई हैं।

[illegible] इस प्रकार होता है :—

[illegible] था। वह वेद, पुराण आदि शास्त्रों और चौदह [illegible] पर में चूहों का उपद्रव देख उसने एक बिल्ली पालने [illegible] (बाजार) में जाकर एक बिल्ली मोल ले आया। उसको पाल- [illegible] में घूमने-फिरने जाने लगी। ब्राह्मण ने सोचा कि मैंने [illegible] इसके घूमने-फिरने से ठीक नहीं हो पाता। इसलिए उसने [illegible] स्थान में बांध दी और ताला लगा दिया। अब तो वह बड़े संकट [illegible] घूमना-फिरना बंद हो गया और भूखों मरने की नौबत आ गई। [illegible] पाप किए जिसके कारण मेरी यह गति-स्थिति हुई।

[illegible] बैठा हुआ एक कूकड़ा देखने में आया। [illegible] कि भगवान ने यहां बैठे ही कैसा सुन्दर भोजन भेज दिया। पर [illegible] उसकी पहुँच नहीं होने से उसने अन्य उपाय सोचा और कूकड़े से [illegible] तुम पुरुष मैं स्त्री, अपना दोनों का विवाह हो जाय, दोनों [illegible] सुन्दर दिखाई है। गणनायक-गणेश अपने पर तुष्टमान हुआ है [illegible] आओ। तेरा और मेरा विवाह हो जाय :—

[illegible] मनोहर, तुठउ [illegible] गण-णाहु ।

[illegible] कूकड़ी, मुझ तुझ करउ विवाहु ॥१६॥

[illegible] के मीठे वचनों में नहीं फसा। उसने विवाह करना स्वीकार [illegible] के कारण अनेक तरह की विपत्तियां भोगनी पड़ती हैं, स्त्रियों का [illegible] आदि बातें कहीं। बिल्ली ने उसका उत्तर दिया और अपने पक्ष का [illegible]

[illegible] बिल्ली के जाल में नहीं फसकर बचा रह सका। कवि ने कूकड़ा [illegible] पारस्परिक संवाद अपनी रचना में विस्तार से दिये हैं और उसी [illegible] दे दी गई है। कई कहावतों का भी सुन्दर प्रयोग प्रसंग-प्रसंग [illegible] :—

[illegible] आपद [illegible] कूकड़ा [illegible] ॥४०॥

[illegible], पेटि न [illegible] जाई ॥४१॥

[illegible] २० में [illegible] राजा, कामकंदला वेश्या और मुहदेवच्छ का उल्लेख है। [illegible] राजा, पाटमदे रानी और खप्पर (चोर) का उल्लेख है। [illegible] ; पद्यांक ६६ से ७२ में पांडव और [illegible] पद्यांक [illegible] में पूर्व देश के [illegible] नगर के धनदत्त वणिये की कथा

चलती है। पश्चात ८२ मे द्रोपदी विवाह और राधा वध का प्रसग वर्णित है। युधिष्ठिर, सहदेव, भीम, दुर्योधन, कीचक, दुःशासन आदि का उल्लेख भी द्रोपदी के जीवन प्रसग मे किया गया है। फिर त्रिया चरित्र का प्रसग भी वर्णित है। मोहनी, मदन सुन्दरी, रम्भा, शशि कोमला, जोजण गधा, रावण सीता, कन्हड योगिनी, के दृष्टान्त मार्जारि दुष्ट के छलने के प्रसग मे दिये गये हैं। पश्चात १८८ के बाद झगडापुरी पाटन की एक अन्तर्कथा दी गई है। इस तरह कवि ने विषय का निरूपण अनेक दृष्टात कथाओ को देकर बडे सुन्दर रूप मे किया है।

उस समय हरियाणे मे कौन-कौन से कथा प्रसग विशेष प्रसिद्ध रहे है, उसकी सूचना इस रचना मे बहुत ही महत्व की मिल जाती है। कुछ पौराणिक और प्रसिद्ध कथाओ की जानकारी तो सबको प्राप्त है पर चदन नगर के धनदत्त और झगडापुरी आदि की कथाए अब अज्ञात-सी हो गई हैं। सम्भव है हरियाणा प्रदेश मे लोक कथाओ के रूप मे वे आज भी कही जाती हो या बडे-बूढे लोगो को उनकी जानकारी हो।

कूकडे और बिल्ली के सवाद मे कवि ने बहुत-सी रोचक बातें कही हैं। जैसे बिल्ला कूकडे को कह रही है कि स्त्रीविहीन पुरुष की शोभा नहीं, उन्हे तो लोग धगडा कह कर बुलाते हैं।

> रेह कूकडा मजारि कहइ, देखउ मनन मइ जोइ।
> त्रिया विहूणा जे फिरइ, धगडा कहिये सोई ॥६१॥

बिल्ली अपना पक्ष समर्थन करते हुए कूकडे से कह रही है कि चौरासी लाख जीवायोणि मे स्त्री और पुरुष की जोडी के बिना कोई नही दिखाई देता अत अगर तुम्हारी और मेरी जोडी मिल जाय तो अच्छा हो। कूकडा उत्तर मे कहता है कि स्त्री का कोई भरोसा नही। और फिर दृष्टात देकर वह अपनी बात की पुष्टि करता है।

उस समय जन-साधारण मे कौन-कौन सी विद्या या शिक्षा प्रचलित थी, इसकी भी सूचना इस रचना म मिल जाती है। चाणक्य नीति का उस समय खूब प्रचार था। तिथि-मुहूर्त का ज्ञान भी आवश्यक था। मत्र-तत्र, वशीकरण आदि विद्याए भी लोग सीखते थे। त्रिया चरित्र का भी ज्ञान आवश्यक माना जाता था और कथा कहानी तो लोगो को बहुत प्रिय थी ही।

> तइ चाणाइक पढे अनेम, तिथि महूरता जाणहि अनेम।
> हत मेखला वसीकरणु, ततु-मतु तियाचरितु जाणहि ॥१२८॥

ब्राह्मण, स्त्री और गौ की हत्या का पाप बहुत अधिक माना जाता था। इस प्रकार अन्य लोक विश्वास और नीति सम्बन्धी अनेक बातो का भी इस रचना मे उल्लेख हुआ है।

इस काव्य की भाषा ४००-५०० वर्ष पुरानी होने से कही-कही उसे समझने मे कठिनाई होती है और एक ही प्रति मिलने मे पाठ मे भी कुछ गडबडी हो सकती है। दो-एक स्थानो मे तो पाठ कुछ त्रुटित भी हो गया है। फिर भी यह रचना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसकी कहानी बहुत रोचक है। हरियाणे प्रदेश की यह एक प्राचीन भाषा रचना अब तक सुरक्षित रह गई है वह एक जैन विद्वान की ही कृपा से, जिसने इसकी प्रति लिखी है।

कुकड़ा मंजारी चउपई

[illegible] देव, [illegible] सिद्धि जिउ फुरइ निषेव ।
[illegible] दास ॥१॥
[illegible] कवित काव्य [illegible] ।
[illegible] विनायकु [illegible] सिद्धि बुद्धि देइ ॥२॥
[illegible] हउँ बलिहारी [illegible] ।
[illegible] मसार, [illegible] तूठा हुइ मोक्ष दुआर ॥३॥
[illegible] विद्यावत न पूजइ अवर ।
[illegible] वेद [illegible], [illegible] वदन [illegible] ।
[illegible] वेद पुराण, चउदह विद्या करइ वखाण ।
[illegible] तणो निवास, अवर नवि पूजइ तास ॥४॥
[illegible] मझारि, [illegible] मोलि लई मजारी ।
[illegible] ले जाइ, पोढी भई सुहातइ [illegible] ॥५॥
[illegible] भई, पाडोसिणि घरि हडण गई ।
[illegible] मझारि, [illegible] घर दुइ चारि ॥६॥
[illegible], नगर सवायो [illegible] फिरइ ।
[illegible] फिरइ [illegible] राति, फुनि वाहुडि आवइ परभाति ॥७॥
[illegible] तब बाभण [illegible], [illegible] येक न घर मैं रहइ ।
[illegible] कर बोलइ पर नारि, नयर सवायो फिरइ मजारि ॥८॥
[illegible] बोलइ बंभना, मइ आनी मूना कारना ।
[illegible] पर गेह. माहि [illegible] नालउ देह ॥९॥
[illegible] पानी मझारि, बभण तालउ पूर्यउ वारि ।
[illegible] भयो, आखि वही काजल उडि गयो ॥१०॥
[illegible] तडफडइ, [illegible] करइ ऊछलइ ।
[illegible] उघडइ बार, [illegible] विलसइ इहु ससार ॥११॥
॥[illegible]॥ [illegible] उनगे बभना, कइ मुठे मनियार ।
[illegible] मनिया हार उतारे, [illegible] वियोग भयो करतार ॥१२॥
[illegible] सहम विहूणउ दिठ ।
[illegible] या आलउ कुकड दिठ ॥१३॥
[illegible] दीठउ, मनि तूठी मजारि ।
[illegible] चित भयउ, [illegible] कीन्हउ करतार ॥१४॥
[illegible] विमासी, [illegible] अगि न माइ ।
[illegible] मनि [illegible] भावइ, [illegible] विलाव ॥१५॥
[illegible] कुमारी, कुकड सक्यो अगि ।
[illegible] विहगी, [illegible] हूंडइ पर दगि ॥१६॥
[illegible] पश्चिम पूरब [illegible] दिसि जोव तेणि ।
[illegible] मृग नैणि ॥१७॥

भणइ विलाई जा दिन जाइ, मस्तकि पडियो लेख।
जनमि जनमि तेरा तिल चाव्या, हियइ सभलि देखि ॥१८॥
दहु जोडी विहि सनोई, तूठउ छइ गण-गाहु।
उनरि आवउ रार कूकडी, मुझ तुझ करउ विवाहु ॥१६॥

॥वस्तु॥ भणइ कुर्कुट निसुणि मजारि,
तिया हुइहि ज लपटि, एक खाहि अवर मुहि लावाहि।
नैन सवारहि अन्न कहु, अन्न खाहि ते पान मगाहि।
अठहिया नव कालिजा दस मन वारह चित्त।
ककुड जपइ ते मुआ, जेपर महिला रत्त ॥२१॥

मजारी: भणइ मजारी निसुणि कूकुडा, तिया काजि मति वडा विज्जइ।
घरि आया आपणइ, उठि महत आदरह दिज्जइ ॥२२॥
मगिण जाहि वसीठ वहि जाइ उलासइ पाउ।
मूढ तिलिपिमी परहरइ, ते पाछइ पछनाहि ॥२३॥

॥चौपाई॥ असमजरिविस वेसभु भुयगम, नर जे चाड किराउ तुरगम।
सहिए जार जुवार जमाई, ए आपणा न हुति तियाई ॥२४॥
कइ हत्या दिउ कइ सलुरवि मरउ, तुझहि छोडि न अवरहि वरउ।
अवर पुरुप मेहरइ भाई वाप, मइ तुझ कारणि गाल्यउ आप ॥२५॥
खिणही लाभइ भाउ कुभाउ, उत्तरि आउ देइ पग आउ।
कूकडउ हउजादि को जायउ हउ जाणणि, तदि कउ पाउ न दीयउ धरणि।
आलइ ठयउ हू तप करउ, आलउ छोडि न भइ ऊनरउ ॥२६॥
रइ कूकडा मजारी कहइ, तिया विना कवण सुख लहइ।
देखि विलिसिजइहु ससार, मूरख काइ हुहि गवार ॥२७॥
हे मजारि न वोलहु आलि, हियो आपणो देखि सभालि।
जे परवति स्या आवहि भाइ, देवलि कीचकु देखो जाइ ॥२८॥
मजारि कहइ कूकडा सुणइ, भूठो साचउ कायो भणइ।
हम तुम्ह हुवो पूर्वलो नेह, भानउ जीव तणउ सदेह ॥२६॥

॥श्लोक॥ न विश्वसे काले शूद्रे कृष्णो चैव ब्राह्मणे।
न विश्वसे कपिल वर्णस्य, स्त्री चरित्र न विश्वसेन् ॥३०॥

॥दोहा॥ वयर विरोध करउ तुझ सेती, मेरउ कह्यउ नअ अधि।
पुरुप देखि हउ अवसरि आई, जे करि लागइ हाथि ॥३१॥
तीनि सइ इकसठि की तीरथ कीसइ अर पूजइ हर देव।
मुझ सी घर गेहणि न लहहि, जे हउइ त्रिय लोइ ॥३२॥
काजु तासु तिय सउ कीजइ जिस सीना मन मेलु।
अण सगाई सग किउ कीजइ खोटउ गग ति जेलु ॥३३॥
मूसा कूकडा अवर विलाइ, पूरव वइर प्रवाह।
अलियउ वोलइ लपट मोस्यउ, हम तुम्ह किस्यो विवाह ॥३४॥
जाति किसी जेमह तुही मानइ, तू जाणइ सहु भेउ।
पढिया पडि भी मन डोलहि छानहि करहि सनेह ॥३५॥

[illegible] ज्यों ध्यावहि [illegible] देव ।
[illegible] न पूजइ देव ॥३६॥
[illegible] दविया [illegible] होइ ।
[illegible] होइ ॥३७॥
[illegible] सुइ [illegible] पनालु ।
[illegible] ऊपरि [illegible] कालु ॥३८॥
[illegible] विमइर, दीवा अवर पतग ।
[illegible] न नरही, चीता माहि कुरग ॥३९॥
[illegible] पर मजोइ करतारि ।
[illegible] दीसइ, त्यउ कूकडा मजारि ॥४०॥
[illegible]॥ [illegible] कोआराग न जाइ ।
[illegible], पेटि न मार निगि जाइ ॥४१॥
[illegible] पडित, वरउ करि सोइ जाइ माथी ।
[illegible] पडिग्ड गहिमी, अदी वद लीयइ हाथी ॥४२॥
[illegible] तुझ आगलि, मूरिख मुझ पतियाइ ।
[illegible] दीजइ, जो भाव सो खाइ ॥४३॥
[illegible] हि वैहि मजरि अजुडि जोडा हि ।
[illegible] घरि करहि सभी विकावहि हावि ॥४३॥
[illegible] निमयउ विधाना, भावउ जाणि म जाणि ।
[illegible] दीठउ, तिमउ कीजइ वखाणु ॥४४॥
[illegible] झूठ करहि व्योहारू ।
[illegible] विपमा इहु संसारू ॥४५॥
[illegible] सजनी आई पाई न ठेलि ।
[illegible] वाडउ न वेलि ॥४६॥
[illegible] थोया [illegible] पछोडहि जिसकण इकु न होइ ।
[illegible] तो न पतीजउ तोहि ॥४७॥
न [illegible] न [illegible] जेठ, नमिगाहि इस वाडव लव मेठ ।
[illegible] कौडा देखहि [illegible], जाइ पडइ जिउ जल महि जोक ॥४८॥
[illegible] तू आवगा रहहि, अइसी वान तू सोभ न लहइ ।
[illegible] मनारू, काइ तूपै वहियहु व्योहारू ॥४९॥
॥[illegible]॥ [illegible] तृगुरगा [illegible] हुंतउ ।
[illegible] स्वग मृत्यु पायाल घर तिस रूप न पूजत अवर ।
[illegible] पुछिरयो पगपाण,
[illegible] अपाग ॥५०॥
॥[illegible]॥ [illegible] तिमु वर कामगी उपर चाउ ।
[illegible] भुलि रही मु दगी ॥५१॥
[illegible] सुनहि गवारू ।
[illegible] नीति निभागु ॥५२॥
[illegible] नेह, मागिक फिटक नइ कइ मेलि ।

कपूर कपेस अरु खरु तुपारु, एकाहि तोलि न तोलि गवारू ।।५३।।
भोज राज निमसतउ धरालु, दिपक मुज वलालु ।
निस घर गेहृणि प्यारी सदा, अरध राति फाडइ नवा ।।५४।।
तिय लगु मदिरि थियउ बालि, तिय लगु भीउ पड्यउ वग दालि
ती लगु रावणु लका मरइ, किउ कुकडा भरोसा करइ ।।५५।।
पुहिमी अपार नीर घर पडइ, तउ कूकड वग पावस चडइ ।
वारि मास देव गली पोम, तन्ह सु दरि किउ दीजइ दोम ।।५६।।
तेरउ कहयउ सुणिहि ऊनरउ, जाणउ विष खावही मरउ ।
इति जुगि जे लोडहि वर नारि, सहि विगुता इह ससारि ।।५७।।
हे आप अरथि तु झखहि घणउ, मन न तुलाउ आपणउ ।
देखत आप न सकउ खवाइ, अवरहु मूरख जाइ समझाइ ।।५८।।

मजारी मूरिख मूझ भावइ नही, पडित लहुउ न कोइ ।
आघउ पाछउ सोचि करी, दीठउ चित्त अव अवलोइ ।।५९।।
मजरि मनि मेलइ रहइ, जिय न फइ सतोप ।
निकुला हुहि सु तुहि मिलइ, कुल का लागइ व दोप ।।६०।।
रे कुकडा मजारि कहइ, देखउ मनन मइ जोइ ।
त्रिया विहूणा जे फिरइ, धगडा कहियइ सोइ ।।६१।।

कुर्कट : मंजरि इदा वमि करउ, जीउ न देयु कलाइ ।
जउ हउ अति स्याणा खरा, तउ सीतू मुझ खाइ ।।६२।।

।।चौपाई।। नर नरवइ सभ जाणइ लोइ, पडित विना न बूझइ कोई ।
लखि चउरासी जीवइ होइ, जोडी विना न दीसइ कोई ।।६३।।
अवर पुरष मेरइ भाई वापु, मइ तुझ कारण गाल्यउ आपु ।
खीणहु लाभइ भाउ कुभाउ, उत्तरि रया आउ देहु पखवाउ ।।६४ ।।
मइ चाणाइक पढे असेस, तिथि महूरत जाणउ परदेम ।
अवरइ जाणनु हल मेखला, वसीकरण वोर परि भला ।।६५।।
धधाली कूटणि जूआर, जाणउ सवहा की सार ।
जे परणी रवहि गहि लार, वहि साचिला गवार ।।६६।।

।।वस्तु।। कवण सायर कवण सायर तिरइ दहु बाहु ।
को सरपाहु मणि हडइ, नाट जात कोसि घरोडइ ।
कवण हुतासण पइसरइ, गरुड पंखि कहि कवण मोडइ ।
कोउ पाउ करवत ले मेइ वोल्यो इण चार ।
सउ हथि आपण गोरडी किम परि पइ अगार ।।६७।।

।।वस्तु।। रोस भरती लयउ गलि पासु तुअ कारणि कूवइ पडउ ।
छुरी लेइ अपणहु घाउ ।
इतु जनमि अवइ जममि तू मरिखउ घर न पाउ ।
कुकुड तुझ उपरि मरउ पेट कटारी घाइ ।
कदे न हुइ दी अपणउ दीठउ तो किव जाइ ।
हारि जुवइ पडव वल्या रह्या वन पडि जाइ ।।६८।।

[illegible] नै तु मन फल साउ ।
[illegible] हेमि [illegible] आउ ॥६६॥
[illegible] कर्ट विनारि ।
[illegible] भीड़ पुडारी ॥७०॥
[illegible] पानी ठवउ निरमल [illegible] ।
[illegible] मोइ यउ चीतु ॥७१॥
[illegible] तनु घड़ूलो तिह भयो ।
[illegible] चोर ढाणउ ले गयो ॥७२॥
[illegible], रोवड धाह पलोइ ।
[illegible] चोर ले गयो कोई ॥७३॥
[illegible] चोर न भावइ भइ मुकी धाह ।
[illegible] गहा रातनि सिवाह ॥७४॥
[illegible] तेह भीतरि पडाहि ।
[illegible] चोर लेहे पीठि मेरी चडाहि ॥७५॥
[illegible] ले गई नगर मझारि ।
[illegible] भेटे, लीये रासिम मारि ॥७६॥
[illegible] मागे [illegible] सी सरइ ।
[illegible] कुण भरोसउ करइ ॥७७॥
[illegible] रहइ हम रारा नित मोहि ।
[illegible] जलवलि कुइला होइ ॥७८॥
[illegible], तिय मव इकड भाइ ।
[illegible] निवड़ै निमड [illegible] ॥७८॥
[illegible] सिरि प्रभारइस्यरु ।
[illegible] जाणइ मभ मसाह ॥८०॥
[illegible] अवर गुण मेल्हड गाडि ।
[illegible] पीहरि जाहिवहि छाडि ॥८१॥
[illegible] वाणियउ धणुदत्तु भासिअति तसु नारि ।
[illegible], साथि नेलइ तुवह हारउ आप ।
[illegible] नामुमरि गयउ वाप ॥८२॥
[illegible], हरि गयउ विदेस ।
[illegible], माह गुरवद वेस ॥८३॥
[illegible], जाम भूख भयउ
[illegible], साथि धरि ले आवियो
[illegible] दिन हुई चारि
[illegible], दीन्ह [illegible] कवारि ॥८४॥
[illegible], दीन नृपि पमाइ ।
[illegible], [illegible] मुकलाइ ॥८५॥
[illegible] कुमाह ।
[illegible], [illegible] धमवानु ।

सुतीय दिटी काई मोणी, आभरण लीये उत्तारि ।
जुवइ खेलण जोग वाल्यउ, कुवइ दे वर नारि ॥८६॥
नीर कारणि दुइ वटाउ, कुवइ झाखइ आइ ।
जीवति दीठी काढि वइगी, वग्गिहि दी मुकलाइ ॥८६॥
वाट जाता रोर मूठी, छिन्नी कपड़ा लिये ।
तिइ करिउ नग्गी छाडि दीन्ही वधि उस ले गये ॥८७॥
इहु नयर चदण जाइ पहुतउ, मिउ जुवार्‌या अड्यों ।
मास छहा इवु हार्‌यउ कूड केरि मो वाहूड्यउ ॥८८॥
जाइ वाहुडि सासुरइ जीवति दिठी नारि ।
जाणि तरवर जड विहूणउ पड्यउ धरणि मझारि ॥८६॥
छुरी मारी कुपड दीन्हो भेद किसइ न कह्यो ।
पुरुष नारि देखि अवगुण इतउ अतर रह्यउ ॥६०॥
सुणि मजरि प्रभणइ । न्नेउना थास्यउ नारायण देवो, पडव जाइ रह्या वन खउ ।
कौरउ घर भू चहि वलि वड ॥६१॥
राजा द्रोपद धी द्रोपती, वेधइ राहु सु व्याह्यहु सती ।
सुणि कपरउ दल मिल्यो असख, देव नारायण पूर्‌यउ सख ॥६२॥
वाजत सख जुधिस्टर सुण्यउ, सहदेवी वीरहकारउ सुण्यउ ।
गिणि जोसी कित कराहि विचारि, किसी सयनायाह कही स्यारि ॥६३॥
खडी उलालइ जोइसु गिणइ, मिल्यउ दल ग्याग्ह खोहणइ ।
टोवइ कारण खडे खधार, करइ अनन तुम्हारी सार ॥६४॥
सूतउ छोड्यो लि भीम कवार, आगइ ते न लहहि पइसार ।
तउ वोलइ जुधिस्ट्यर राउ, सहेद भीवसेणि ले आउ ॥६५॥
गयो जोइसी न लागउखेउ, भोज भोज करइ सहदेउ ।
सुणइ भोज जाग्यउ पडार, जाण्यउ कयरउ तणउ सधा कालु (र) ॥६६॥
सुणवि भीम वालइ नित, कहइ त कयरउ करउ सघारु ।
घोडा सेती घोडउ हणउ, गयवर सेती गयवर मणुउ ॥६७॥
वाचहु हाथि धरइ जिउ सीसी साल्यउ, आप गलि जिउ घालउ ।
पीति भीउज कीया रला पेलि, पीड का पडी केदारह ठेलि ॥६८॥
दुरजोधन पूछइ रतखिणा, हमको पडी के दाग्ह तणा ।
तेल तणी अघटइ कडाहि कान्हड घण हर घाल्यउ वाल्हिहि ॥६६॥
राधा-वेध कर नर जोई, या द्रोपदी विवाहइ पोइ ।
पहिलउ घणहर लियउ कालि, गिहह्यौ प्राण नारायण आगि ॥१००॥
चाढयउ धनुष धराणि गालि गयउ तव दोवइ दूसासणि लयउ ।
दूसासण तहु सवयउ चाडाइ, तीजइ सल्लु पहूतउ आइ ॥१०१॥
सल्ल पासि जव वापरिद रह्यउ, कोप्यउ कन्ह धनुप करि लयउ ।
रय नदन जव धर्‌यउ उदाणि कूड रच्यो रघु सारग प्राणि ॥१०२॥
चड्य पउनाहि तव खिणु अड्यो, कन्ह वुलायो तव कापड्यो ।
तव कापडी लियउ सारगु, नव खड प्रथमी जोवइ मगु ॥१०३॥

.... ।
तनु दूरन्ति पन्धिड हाथि, मनुहर दवकि चडाव्यडपाथि ॥१०४॥
तनु अरानन ले रहि तुनु, मनि मुमरयड तिन बोभा दुणु ।
... दीनी मूठि, वेध्यड गाह भवती पूठि ॥१०५॥
... ... हयड, धडहडी इमहि मउलि गयउ ।
... धावट मिनि धानी मात, विलस वदन हूया भोआल ॥१०६॥
... ... परउ, ढोवइ पग्णी फेग फिरइ ।
... परउ पनाल, गाहि दुमाग्ण नच्चयड वाल ॥१०७॥
... ... सीनर मरयड, ढोवइ कडरउ दल सगहुउ ।
... ... मरयड, किउ कुरडइ भगेसो वरयो ॥१०८॥
... ... नालि, प्रथमी हुति राव जर जाति ।
... ... सीयो, मासु पिनु निहा बालकु भयो ॥१०९॥
... ... बावइ वरट लिधग, विन दु [illegible] र ।
... ... दिन रहइ, ब्याह संजोवइ नरवइ कहइ ॥११०॥
... मागी नाहउ ठयउ, राउ खडग ले व्याहण गयउ ।
......मीय आणी घुरागउ, मानु पिंडु निहाल्यउ आइ ॥१११॥
मानु मुगर निन्ह कयाउ विनाह, मास पिंड हुग तणउ भरतार ।
... मानु मिरि धरगउ, सठि तीनि वमइ तीरथ कर्यो ॥११२॥
... ... मजारि, त्रिया चरित्तु वहु भगिहिभा ।
गोरी गुनि ... सहाउ, वल्ह पइपइ मजारि चाउ ॥११३॥
... गोदावरि जाइ, मुंध पिंडारड पहुती आइ ।
... ... तुपगु करड, भाधाल्यउ मुखि राखि सूनीकलइ ॥११४॥
... ... अरड, राइ धीड विचाल्यउ पडइ ।
... दीया ... नाहि तुरंतु, उगउ मार मार प्रभणतु ॥११५॥
उठयो ... विकरालु, भालामुखी राखिसु विकरालु ।
... ... या मेरी नारि, जे कुछ सइइ तउ राखसुमारि ॥११६॥
... मिरि गली राहयो, जिउ विहुगु वरणि पडि गयो ।
... ... राउ, जाइ हथणापुर लाधउ ठाउ ॥११७॥
... ... रानिमु हयउ, मनि तिया कह राजा भयउ ।
... ... हयउ घर वासु, कूकर दोस कि दीजइ तासु ॥११८॥
... वैसानर वसइ, जे धूनारो गउथी चलइ ।
... ... कविलासु, तउ म्हारइ होइ देवे मासु ॥११९॥
... ... भरि आगि, वालि वरुणु वैसोनर सागि ।
... ... मनेहु, तिह मरिगउ किउ तूटइ नेहु ॥१२०॥
... ... बिरानी भई, दात जीभ मुरछागति लई ।
... देखि ... फुरड, मनि इतुछ्द मुनि उत्तरइ ॥१२१॥
... ... आइ,आगइ देखइ पडी विलाइ ।
... ... जागि कि मुइ पडी विकरालि ॥१२२॥
... ... देख्या जाइ ।
... ... गयो, तउ कूरडउ हियइ चीनयो ॥१२३॥

आलउ छोडि गयो कुकडा, करण कलाप करइ वापडा ।
किउ उत्तरियो तिह् य भई, या वापुडी अगु खाघइ मुइ ॥१२४॥
खा पसारि हियो वर्‌यो, कूठाणि चरित भूलि उत्तरयउ ।
.... ॥१२५॥
कइ तू रभा कइ सुरसनि, कइ पारावती ।
सती सती करि नेउ गयो, पख समारि टपकि मुह लियो ॥१२६॥
जाम कुकडउ गहउ मजारि, त जाण्यउ मनह् भूलि चूकि मइ पाउ दिन्हउ ।
हउ मूरख अवुझ नर तुझ वयणि तिनउ ॥
ते नर मरहि न उवरहि तिय वेसापि कवुध ।
काइ कर तन उजले जउ भीतरा कसुध ॥१२७॥
तइ चाणाइक पढे असेस, तिथि महूरता जाणहि असेस ।
हल मेखला वसीकरणु ततु मंत तिय चरितु जाणहि ॥
तिय वदि तन जाणही रे कुकुडा मतिहीण ।
आख्या पाटा बाधि करि, पगाह् वजावहि वीण ॥१२८॥
जउ मोहणि छाल्यो रूपमगदु मसि कोमला दिक मुनरिदा ।
मयण सुदरि छल्यउ मायासुरु रभा छल्यउ हारिचदा ॥१२९॥
जोजन गधा छल्यउ असुर जिउ रावण सीय वर नारि ।
कन्हड छल्यो वहुडि योगिणी, तिउ कुकुडा मजारि ॥१३०॥
मजरि प्रभणहि सुणहु कूकडा, इहु ससार असारु ।
आवागवण अरहद जिउ गछइ, अवचलु इहु करतारु ॥१३१॥
ए नल नीव विघाता नरवइ गय ते ससारि ।
के दिन दहु पहली पलाणइ के पाछइ दिन चारि ॥१३२॥
सप्त पताल करइ विल मूसो अति विलाइ खाई ।
मच्छ फिरइ साइर माहइ नितिहिसो हाटि विकाई ॥१३३॥
हरणा खोज दुरस दीसइ जहा पासा तहा पाउ ।
पूरव दत्त पायइ के राणा के राउ ॥१३४॥
मुझ नइ आज पच चउ लघण, करिमि कर इह लाघु ।
च्यारि पहरि निसि तुझ मउ खीणी, तिसु घणु हियटइ दाघु ॥१३५॥
अब भख आणि गुसाईं दीन्हउ छोडउ नाहि खाउ ।
गहिइ साकुकड मो जोस वारिजइ लेह किसइ लेह तो नाउ ॥१३६॥
कुइणा वयण सुणि सु भलि आलइ कुकड धावइ ।
मरा वयण हा हिवहिणी पासिविसी समझावइ ॥१३७॥
जदि हउ इनि कुकुडि लोडी तहि म्हा काया कोसु ।
इस पहिली मुझ खाहे वहणी जिउ कुलह न आवइ दोसु ॥१३८॥
अभक्ष किउ खाइजइ भख छोडियइ गवारि ।
तुम्ह भरतार घणा कुक्डसी विलसहु इहु ससारि ॥१३९॥
इहु ससारु असारहु मजारि तुम्ह जाणहि सहु भेउ ।
नाहु अप्पणउइ मानीजइ जिउ पूरिजियइ सुदेउ ॥१४०॥
मइ दुख घणा सह्या कुकड़ कारयाणि सदाई आडो ।
जीउ विहूणी हू देवहणी ताम घर पडी ॥१४१॥

[illegible] तुम [illegible] गावैही ।
[illegible] मिथुनि [illegible] यावहि ॥१४२॥
[illegible] न [illegible] भाउ ।
[illegible] बइन्वइ एाउ ॥१४३॥
[illegible] मोडि सनेहु ।
[illegible] मुएह ॥१४४॥
[illegible] मुहि हियडइ मोहु ।
[illegible] मोहु ॥१४५॥
[illegible] आइ तुम्ह पाहि ।
[illegible] मु नाहि ॥१४६॥
[illegible] जे जाणइ गिरि गडइ ।
[illegible] कुनि नरगि पडइ ॥४७॥
[illegible] को गलि न ल्याउ पासु
[illegible] मुहि [illegible] ॥४८॥
॥[illegible]॥ [illegible] निगुनि [illegible], नोम असि नयर नाहु हुतउ ।
[illegible] गुण [illegible] कम होण जो थानु लहतउ ॥
[illegible] हूवना फिम्वउ दिठउ [illegible] ।
[illegible] तुम्ह दह [illegible] ॥१४६॥
[illegible] गुण [illegible] महि कूव तार जाइ पहुतउ ।
[illegible] भइ चितति सूतउ ॥१५०॥
[illegible] (पा) [illegible] नूनि किम दीयइउ पदारथ चारि ।
[illegible] निउ पुत्ता परवारि ॥१५१॥
[illegible] नारि दुइ दुइ घाले जाघ मझारि ।
[illegible] जाइ विलसि रयणाइर कहइ ॥१५२॥
[illegible] तनिगुणा, भगडा पुरि पाटण अवगुणा ।
[illegible] नगर मझारि, उरघ दत्त छइ पडलिदुवारि ॥१५३॥
[illegible] गुण मनि आनयो नरयउ, कारिविथा रहियो गह गहयो ।
[illegible] भूनि वाट झगडा पुरि जाइ ॥१५४॥
[illegible] दुवारि, [illegible] बाह ले गयो मझारि ।
[illegible] बहु आदरि दियउ, मेज सुराल्यो दूउण लियो ॥१५५॥
[illegible] मानि, मित्र गुण दीठउ पूछि विसासि ।
[illegible] गाजइ वात भवतिन रहइ ॥१५६॥
[illegible] भारिउ पासइ चढ्योइ ॥१५७॥
[illegible] गयो, जाइ सभा राजा वीनयो ।
[illegible] चोर आयो तुम्ह पासि ॥१५८॥
[illegible] मित्रगुण [illegible] लागा [illegible] ।
[illegible] पिढाणि ॥१५९॥
[illegible] पवन वेगि [illegible]पुर गये ।
[illegible] सभा पलोवइ आइ ॥१६०॥

भरी सभा महि लाघउ लोडि, वूढीठा घाल्यउ वहोडि ।
घर वेगाल मिहाल्यउ राड, नरवइ दीन्हउ दरव पसाइ ॥१६१॥
स्यउगुण जाइह्यउ ले नारि, रखवाला वइसाल्या वारि ।
जोगी तणा भेस ठग करइ, खपर ले वलि भिक्षा फिरइ ॥१६२॥
छह छह मास जव विलसता एकाल पास वमासपिलीयो ।
अथ दरवहुडपहि आहि, राउ न देइ तउ वपाखाहि ॥१६३॥
रातउ हयंउ न मीठउ खाघु मन चित्यो न विलसण लाका ।
करि उठारा तिह घाल्यउ सासा, इसु निघन स्यउ हुवउ पर वास ॥१६४॥
सतगुण भणइ निसुणि हे नारि, मति जाणाहि तू इहु परियारि ।
साइर दीपइ पदारथ चारि, दुइ विलसागा इसु ससारि ॥१६५॥
कहउ भेद स्यउगुण स्यउ जाइ, वघ्याउ सोई पटोलइ लाइ ।
चड्यउ रोस दीन्ह करहरी, कालहु पहि ऊपटियो छरी ॥१६६॥
उसिड गुण तू काल पाभि तइहू पूछ्यउ देखि वेसासि ।
जीवदया कीजइ ससारि एकथा सुणि पावइ मारि ॥१६७॥
सिउगुण भणइ निसुणि हे नारि, चद्रसेणि राजा ससारि ।
नतही चडइ सहस लख्य जे चडइ भूवलि वासी मांस न खाइ ॥१६८॥
मारइ सहर लख्य जे चडइ कुमुग तो कउसा पडइ ।
सभ सावज मिलि भेट्यउ राइ एक एक निति पडिसी माइ ॥१६९॥
खोडउ हरिण लगावत उपाई पउलि दुवारि पहूतउ आई ।
वाग विछनी हडइ हरणि अमिस हाए वडी सारपणि ॥१७०॥
पहु फूठी जठ ऊगत भाणु गहाणइ लागी हरणी जाणु ।
मद पखी निहालई खडउ हरण कहइ म्हारउ उसरउ ॥१७१॥
हरिणी कहइ न घालउ घाउ तउरसा विन त्योराउ ।
आपु आगइ लियउ वुलाइ सत दीठउ घाल्यउ मुकलाइ ॥१७२॥
हरणी हरण हुवउ घर वासु एक रयणि कइ भगि विलासु ।
तू आया हूवा छ मास पिवइहितू भोग विलासु ॥१७३॥
पिता काजि न फेडहि आपु कितु मुझ मारि सहइ सिरि पापु ।
केड का डाहि कीरि वाढी रासि, भाड्यउ फोड्यउ काल त्रासि ॥१७४॥
कालउ देख्यउ हियइ विचारि, ठगु मारयउ व पोलि दुवारि ।
कूकडि सरस कहाणी कही, सा मंजारि मोनि करि रही ॥१७५॥
जे मजरि करतारा डरहि हूहू करती हाहा करइ ।
मजरि तूसि हसइ हड हडइ, छुटई कूकड मगरी चडइ ॥१७६॥
कुकडी कुकडा जीवा लगइ, मा मजरी तव विलसी भमइ ।
हरियाणउ लाटोहु गाउ पाल पूत वल्हा इपु नाउ ॥१७७॥
मजरि तणी सो करति करइ, जिणि छदि जीयउ तिणिही उतरइ ॥१७८॥
इति कूकडा मजारी चउपई समाप्त ॥
सवत् १६६२ वर्षे अश्विनि मासे शुक्ल पक्षे चतुर्थ्यां तिथौ शुक्रवारे श्री [illegible]
मध्ये लिखत ॥। पातिसाह श्री अकबर राज्ये ॥श्री॥

राजस्थान के कतिपय महत्वपूर्ण प्राचीन लोकगीत

श्री अगरचन्द नाहटा

राजस्थान का लोक-साहित्य बहुत ही समृद्ध है। यहा गीतो और वातों के रूप मे मौखिक सामग्री के अतिरिक्त लिखित रूप मे भी प्रचुर सामग्री प्राप्त है। जैन विद्वानो ने लोक-कथाओ को अपने ग्रन्थो मे सगृहीत किया है जिससे उनकी प्राचीनता का पता चलता है। इसी तरह लोक-गीतो की 'देशियो' को भी उन्होने रास, स्तवन, सज्झाय आदि रचनाओ मे प्रयुक्त किया है जिनसे वे लोकगीत कितने प्राचीन हैं इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। लोकगीतो की 'देशियों' की प्रारम्भिक पंक्ति उन्होंने अपनी रचना के प्रारम्भ मे उद्धृत करदी हैं। कुछ लोकगीतों को तो उन्होंने पूर्ण रूप मे भी लिख रखा है। ऐसे पाच सौ वरस तक के लोकगीतो का लिखित रूप हमे प्राप्त होता है।

जो लोकगीत पूरे लिखे प्राप्त हुए है, उनमे से कुछ हमारे सग्रह की हस्तलिखित प्रतियो मे हैं। मैने उनको जैन साहित्य महारथी स्वर्गीय मोहनलाल देसाई को भेजकर उनके जैन गुर्जर कवियो भाग ३ पृ० २०८३ से २१०४ मे प्रकाशित करवा दिया था। श्री देसाई महोदय ने अपने इस ग्रन्थ के परिशिष्ट मे २३२८ देशियो की अनुक्रमणिका प्रकाशित की थी। उन्होंने अवश्य ही इस सूची को तैयार करने मे सैकडो रासादि ग्रन्थो का उपयोग किया था। फिर भी हजारो रास चोपाई आदि रचनाए अभी ऐसी और भी प्राप्त हैं जिनमे उनकी सूची के अतिरिक्त अन्य देशियो का भी उपयोग हुआ है। परन्तु ऐसा परिश्रम साध्य भागीरथ काम करने वाला आज कोई देसाई दिखाई नही देता।

मुझे कुछ फुटकर हस्तलिखित पत्र एव गुटकों मे इधर और भी कई पूरे लोकगीत लिखे हुए मिले है, जिनमे से एक गुटके के गीतो को यहा प्रकाशित किया जा रहा है। यह गुटका मुनि पुण्यविजयजी के सग्रह का है, जिसका

[illegible] अभी तक किसी ने नहीं किया है। अहमदाबाद जाने पर मैंने मुनि श्री [illegible] के संग्रह के गुटकों का प्रथम बार अवलोकन किया और उनमे से कई महत्वपूर्ण गुटके [illegible] उपयोगी सामग्री की नकल करवा ली। प्रस्तुत गुटका संवत् १७६० वि० का है, जो नवा नगर मे तपागच्छीय मुनि वृद्धि कुशल का लिखा हुआ है। इसके प्रारम्भ के दो पत्र फट गये हैं। पत्रांक ९ से ११ और १२६ से १४८ तक जो लोकगीत लिखे हुए मिले, उनको इस लेख मे प्रकाशित किया जा रहा है।

इन लोकगीतों मे से एक भी लोकगीत अभी जनमुख पर प्रचलित प्रतीत नहीं होता और न इनका उपयोग ही जैन रचनाओं की देशियों आदि मे हुआ है। २६६ वर्ष पूर्व लिखे हुए ये लोकगीत कम से कम तीन-चार सौ वर्ष पहले जनता मे अवश्य प्रचलित रहे होंगे। इतने पुराने लोकगीतों को लिखा रखने का श्रेय वृद्धि कुशल मुनि को है। इनमे से एक लोकगीत पंजाबी का भी है। अन्य सभी गीत राजस्थानी भाषा मे है।

नवा नगर कौन सा स्थान था, यह निश्चिय करना कठिन है। नये-नये नगर बसते है, वैसा ही यह भी कोई नगर है। इस नाम वाले नगर राजस्थान तथा सौराष्ट्र में है। यदि गुटके के लिखने के स्थान का निर्णय हो जाता तो ये लोकगीत किस प्रदेश के है, यह भी निश्चय हो जाता और आज उस प्रदेश मे प्रचलित है या नही, इसका पता लगाने मे सुविधा रहती।

इनमे अधिकांश लोकगीत शृंगार रसात्मक हैं। एक गीत 'गिरनंदराम स्वामी' रचित है। यह गीत मोहन की धवल है अर्थात् श्रीकृष्ण से सम्बन्धित है। अन्य गीतों मे माण्डवगढ, बीकानेर, उदयपुर आदि स्थानों के नाम आये हैं। एक गीत की कुछ पंक्तियां ही मिली है, जिसमे मोहम्मद अमीखान के बाग का नाम आता है। यह बाग कहां है, इसका पता लगाना आवश्यक है। उस समय के सामाजिक जीवन की जानकारी भी इन से मिलती है। कई गीतों मे दारू, अमली, भाग आदि का उल्लेख है। यहां बीजापुर की भाग की प्रसिद्धि भी वर्णित हुई है। एक गीत मे कुंवर आभा जी का नाम है। अन्य मे जोधपुर के अजमाल अर्थात् अजीतसिंह का नाम आता है। वैसे लोकगीतों मे अपने समय के राजाओं के नाम प्रयुक्त कर दिए जाते हैं। अतः यह कोई जरूरी नहीं कि यह गीत उनके समय मे ही बना हो।

सुगणां मारू (१)
(राग मल्हार सांमेरी)

देशी ढाल योजणाया ॥
सुगणा मारू मीठा मारू सामरीया ।
सुगुणा मारू रगभरि माढ्य पल्हाण हो,
रगभरि रगभर, रग भरइ रे, मारू सामरया ॥१॥
मीठा मारू सुगणा मारू सामरीया–
कि हजा मारू थे पाडल म्हे जाय हो
एकण एकण धाणइ रोपीया रे मारू सामर्‍या ॥२॥
सुगणा मारू मीठा मारू सुगणा मारू
थे मोती म्हे लाल हो ।
एकण एकण नथ विराजीया रे, मारू सामर्‍या ॥३॥
सुगणा मारू मीठा मारू सुगणा मारू । टेक टोट ।
थे चावळ म्हे दाल हो
एकण एकणि थाल परूसीया रे, म्हारा सामर्‍या ॥४॥
इति गीत छन्द झमाल राग ।

रावत ढोला (गीत)-(२)

था पर वारी हो रावत ढोला,
था पर वारी हो रावत ढोला,
ढोलाजी ढोलाजी थे छो माडवगट ना रे वासी ।
म्हेछा वीकानेरी हो, माणीगर ढोला ॥था पर.......॥१॥
ढोलाजी ढोलाजी म्हानइ थे नाहनकडी मत जाणो ।
म्हेछा वरसा वारा तेरा हो, माणिगर ढोला ॥था पर.......॥२॥
ढोलाजी ढोलाजी म्हानइ ओलू डी थाहरी आवइ
थे छो राजि परदेशी हो, रावत ढोला ॥था पर.......॥३॥
ढोलाजी ढोलाजी थे सदेसो म्हानइ पठायो
म्हे छा अरजावाली हो, रावत ढोला ॥था पर.....॥४॥
ईति गीत पद ॥

(राग काफी गीतं)

अमलीड़ा रई गलि बांधी-(३)

[illegible] रे गळि बाधी रे, मा म्होंनि अमलीडा रइ गळि बाधी ।
[illegible] लागी रे, मा मोनट अमलीडा री गळि बाधी ।
[illegible] बाजरी रे, अमल्ही बावड भाग रे ।।मा म्होंनि
[illegible] लागी रे, मा म्होंनि·······।।आकणी।।गीत छन्द ।।
[illegible] टोपरा रे, अमली विणजड भाग रे ।मा म्होंनि ······

[illegible] रे गज, अगारड वर धरी हारी हे, । मा म्होंनि····
[illegible] गेज बिछाताती, गेजडली जोई जोई जोवा गई थी रे । मा म्होंनि·······

[illegible] रे, मा म्होंनि·······
[illegible] बाटरा रे, अमली बोहरइ कुतारु कूंडू रे, । मा म्होंनि·······

।। इति गीत पद सपूर्ण ।।

म्हांका मारूडा नइ किण विलंवायौ (४)

राग मल्हार, काफी मिश्र

[illegible] नइ किण विलवायी । कि० ३
[illegible] विरमायो, हो राज ।।१।। म्हा० का छन्द-टेक
[illegible]
[illegible] बनायो, हो राज ।।२।। म्हा कि वि. २
[illegible]
[illegible] आयो हो राज ।।३।। म्हा का० वि० हो राज ३
[illegible]
[illegible] बनायो हो राज ।।४।। म्हा० कि०

प्यारा लागो–(५)
राग सामेरी काफी

अब म्हानें प्यारा लागो छो जी, प्यारा लागो छो जी ।
प्यारा लागो छो जी राजि, प्यारा लागो छो जी ।
चरखा लायो पूणी लायो, भीणा भीणा सूत कतायो रे ।
म्हानी रे येठाणी रे, भाभी प्यारा लागो छो जी ॥१॥
अब थे प्यारा लागो छो जी ॥ आकणी ॥
हाथ मा लेयो लोग सोपारी, पान नो वीडो हाथ ।
जेठजी नइ पाग वणास्या, जास्या साहिवा रइ म्हे साथ रे ॥२॥
म्हानी रे येठाणी रे, भाभी प्यारा लागो छो जी ।
इति गीत ॥ लिखितेद श्री नृव्यद्र गे ॥
सवन् १७६० । १६२६ प्र० ।

गिरनंदराम स्वामी रचित मोहन धवल
(वालूडा योवण जाय)–(६)
राग टोडी पंजावी

मेरा वालूडा योवण जाय रे,
मिक्यू जीवूं, क्यू जीउ रे ।३। मि० डोढ ।
नद का लाला मुरली वाल्हा, मो कु चाल्यो ढोरी लगाय रे ।
मिक्यु जीवु, मेरा वालूडा यौवण जाय रे । मि० क्यू जी० ४
जैसा फल चवेली का वाला, धूप पडें कुमिलाय रे ।
मि क्यू जीवू, क्यू जीउ रे ।४
मेरा वालूडा योवन जाय रे । मि० ॥२॥
पीय विना पीली भई मइ मरू कमल विपाय रे ।
मि क्यू जीवु, क्यू जीउ रे ।४।
मेरा वालूडा योवण जाय रे । मि० ॥३॥
'गिरनदराम सामी वीनवइ, मोहन का धवल गाय रे ।
मि क्यू जीवू, क्यूं जीउं रे ।
मेरा वालूडा योवन जाय रें । मि० ॥४॥
इति गीत सम्मत्त ॥

तूं आवि मिल–(७)

[illegible] पर्देसी परदेसिया तू आउ मिल रे ।
[illegible] [illegible] [illegible] ढलीया ।
[illegible] पर्देसी परदेसिया तू आउ मिल रे ॥

पंजाबी–लॅगिदी वे प्रीत–(८)

(ध्रुपद छंद गीत)

[illegible] प्रीत [illegible] लग्गे गावे, टूटडी दा हाल्ह न कोई यार वे ।
[illegible] टूटडी दा हाल्ह न कोई यार वे ॥१॥

[illegible] दुखीआन जीवदा कोई प्यार वे ।
[illegible] [illegible] भेट्या वे, जहरदा पयालडा पीवड़
आशिक रोय-रोय नयनवे ॥२॥

[illegible] [illegible] फकीरा दी लोड़ ।
[illegible] गरीबा दी लोड़ ॥३॥

[illegible] अवाडी वे अकुंग दे दे मे हारीयार वे ।
[illegible] प्रीत [illegible] लग गावें ॥४॥ ई०

ढोला (९)

[illegible] ढोलो [illegible] जाणड़
[illegible] जाणा ।
[illegible] जाणड़ है दागी म्हारी । म्हे ढोला.........॥१॥

[illegible] [illegible] पडवड़ मजल ममाणड़'
[illegible] । म्हे ढोला........ ॥२॥ ॥टे०॥

[illegible] पीआला, [illegible] पीड म्हानड़ं भी पावड़
[illegible] । म्हे ढोला........ ॥३॥ ॥टे०॥

[illegible] ढोलो म्हांसी [illegible],
[illegible] । म्हे ढोला......... ॥४॥ ॥टे०॥

ढोला जी री करहलड़ी (१०)

(राग मल्हार सोरठी)

ढोल्हाजी री करहलडी, करहलडी कटकारउ
राजिदे म्हानउ मेलउजी, ऊटडा रे गळइ घूघरा
साढडीया नइ सोवन वागउजी,
साहिवा म्हारा, साढडीया नि सोवन वागउजी
ढोलाजी री करहलडी गुणसायर, ढोल्हउ म्हानउ मेलउजी ॥१॥
आकणी

(छन्द) जो थे चाल्हउ साहव चाकरी साहव म्हारा तो घण री कगण हुवालोजी।

ढोलाजी री करहलडी, करहलडी मिमिरी रो कूंजउ म्हानउ मेनउजी ॥२॥

ढोला मारू थे परदेशी होय रह्या, कै साहिव म्हारा थारी घण जोवइ पाटउजी।

ढोलाजी री करहलड़ी, करहलडी मोत्या री माळा म्हानउ मेलोजी ॥३॥

ढोलाजी री करहलडी, करहलडी मेडतियो ठाकुर म्हानउ मेलउजी।
ढोलाजी री करहलडी, करहलडी नवगढ रउ मडण म्हानउ मेलउ-गज ॥४॥

॥ इतिराग गीत, छन्द चउक्क ॥

लेखने प्रशस्ति—सम्वत् १७६० वर्षे शाके १६२६ प्रवर्त्तमाने। वसन्त मधु। चित्र वदि १३ जयाया। श्री तपागच्छे। प० श्री ५ श्री धीरकुशल ग० शिष्य घण नाण घड गणि श्री ५ श्री गजकुशल ग० शिष्य ज्ञानवृद्धि श्री ५ श्री वृद्धिकुशल गणिभि लिख्यते। श्री नवीननगर मध्ये। देशी राग १००८, देशी १००८ नुपता १०८ टपा ध्रूपद छन्द तार कठ स्वर ओठ तालू हृदय। नाभि चक्र १००८। श्री गणेश लबोदराय नम। श्री नम। गणि श्री १०८ श्री गजकुशल गणि गुरुभ्योनम अथ राग ३६ रागणी। स्त्री। ६ पट राग। गाथा। प्राकृत। छन्द। टेक। दोडिउश्च। चउपय। दुवपय। ध्रूपद। अष्ठपदी छन्द। जकडी। जिह्वाग्रणी। कठ गल ग्रहण। नादा नून नहिना

गीतेय छन्दगीतु । प श्री वृद्धिकुशल-गणिर्नि लिखिरो नव । मुक्ति मोक्ष पग युग भमक छिमक । ऽनितान कर्णाविर्भाव श्वित्र सुमरण सुमय । स्व वृद्धिकुशल निम्मणेनच वाच्यार्थ ।

प्रति मुनि पुण्यविजयजी सग्रह गुटका न० १४ (प्रारम्भ के २ पत्र फट गये हैं । तीसरे पत्र से सात के बाद आठवां पत्र नहीं है तथा नव से ग्यारह मे उपर्युक्त देशिया और प्रशस्तिया लिखी हुई हैं ।) इसी गुटके मे आगे पत्रांक १३६ मे १४२ तक फिर देशिया लिखी हुई है, जो आगे दी जा रही हैं –

नवरस राग उल्हास टेढो पाग (११)

राग काफी राग मल्हार गीत

छन्द राठोड़ी देशी (१) ढाल सिगार रसेच

टेढी ने झुकावइ मारा राज टेढी न झुकावइ
रे अमला रो मातो रे पाघना हो राज ॥१॥ छन्द आकणी
दोढि टेक याहरी रे ओढू म्हे करा रे गाढा वालिमीया ।
पीउजा म्हारी-म्हारी न करड रे कोय लहुडीजी रा वालिमीया ॥१॥
टेढी.......

गोरडी रा सर्वंग नाचीया रे गाढा वालिमीया
पीउजा हग मिम दीन्ही म्हा मु वोत लहुडीजी रा वालिमीया ॥३॥
टेढी.......

लहुडीनइ मगाम्या पोमचो रे गाढ वालिमीया
मामनर्मोनइ चून्दडबोल लहुडीजी रा वालिमीया ॥४॥ टेढी....अकणी

दारूड़ो (१२)

राग मल्हार भमक छन्द ताल श्रृंगार रसेषु

दारूडो मगायो म्हारा राज दारूडो । म० ४
ओढि देरि चाढिने रूपाळी झारि मतवाळी ॥१॥ म्हारा राज आकणी
-छन्द टेक

दारू मगाम्या मुहरा मून्दरड रे राज, तोल्यड टाक बिकाय
प्यालो नाखड रावरणोजी, मोत न गरगड जाय ॥२॥ म्हारा राज

(राग काफी देशी ढाळ । श्री नवानगर स्थाने ग० श्री ५ श्री गजकुशल ग० श्री ५ श्री प्रीतकुशल, आर्याबाई, श्री माणिक लक्ष्मीजी एव श्री वृद्धिकुशल पडित।)

गाढ़ा राज मारू (१३)

गाढा राज मारू, गाढा रे राज मारू, म्हाका गाढा राज मारू ।।टेक।।
अमला रो मातउ दारूडानइ छाक्यं
पाणीडारइ मोल्है दारूडाउ म्हानू पायौ रे
दारूडो म्हानइ पायौ रे, म्हारा गाढा राज मारू ।।१।। अकणी गाढा २
गाढा राज........ पाणीडारइ........पायौ रे ।।
(गीत छन्द सोरठ मल्हार रागे चकल्ही)
नाणदी रो बीरो राज मोहन म्हारो
शोकडल्हीरउ भंभेरयउ म्हारइ घरि न्हायो रे ।।२।। म्हा का........
(इति सोरठ मल्हार छन्द गीत । प्याला रसेण च)

कठइ रति मांणी-(१४)

ऐंकारी नमः ।।

देशी ढाल राग=काफ्ही राग सांमेरी मल्हार

कठइ रति माणी कठै रित माणी
मृगानयणी रा कत, थे कठइ ऋतु माणी । पूर्व अकणी दोडि
अळगारा खडीया राजेंद आया ।
हा जी थारा हा जी थारा घोडिला री दपट पिछाणी हो राज ।१।
कठै रति माणी, कठै रिति माणी
कठि ऋति माणी हो राज०
हो मृगा नेंणी रा राजि थे कठै ऋति मांणी ।।२।।

थे कठइ ऋतु माणी ।३। ।४।

इति श्री सामेरी रागे
प श्री वृद्धि कुशल कठश्वरे गीत छन्दः ।।श्री।।

ओनम ॥सुंदरी नमः ।

मृगानयणी रा ढोला–[१५]

राग मांमेरी–सोरठ काफी

[illegible] रा ढोला मृगानयणी रा ढोला
[illegible] ढोला ॥[illegible]॥ टेर
[illegible] परणिया [illegible]
[illegible] ।१।

[illegible] ढोला । मृगानयणी रा ढोला ०४
[illegible] ॥श्री राम १०८

दारूड़ारे अमलो रा झोल्हा–[१६]

राग मांमेहरी मिश्र मल्हार छन्द–शिखर :

[illegible] रा झोल्हा [illegible]
[illegible] अमला रा झोल्हा [illegible] ।[illegible]–टेक
[illegible] अजब [illegible]
[illegible] ॥१॥

[illegible] अमला रा झोल्हा [illegible]
[illegible] रा झोल्हा [illegible] ॥२॥
[illegible] मिश्र राग [illegible] ॥

ओलूड़ी (१७)

राग देमी

[illegible] नेयो
[illegible]
[illegible] नेयो
[illegible]

धोबीडा रो धोयो, केशर मां लपेट्यो
ठम्मा ठम्मा करतो नइ आवइ । म्हानइ .. ॥१॥
ढोला नइ मगायो ढाला नइ मगायो
वारा फूल्हा वाळी, टे परमल पेटी
ढाला ढलका करतो नइ आवइ । म्हानइ.... ॥२॥
घोडला मगायो घोडला मगायो
लावी नळीया लाटु काडावावाळा
खुररा खुररा करता नइ आवइ, म्हानइ ....॥३॥
मागडली मगायो मागडली मगायो
वीजापुर वाळी, तीखी निम्रणीयाळी
खम्मा-खम्मा करतो नि आवइ । म्हानइ.... ॥३॥
इति गीत । लि । बोराजी म०

भमरजी वांणिया [१८]

देशी

नाडी मा बोलें डेडका वाहला, मगरें मा बोले मोर ।
गामे मा बोलें वाणीयो, सरकें घाघरीया री डोर ।१।

भमरजी वाणीया निजरा रो मेळो दे ॥
ऊची नें मेडी झगमगें वाल्हा, झर मर वरसें मेह ।
आवु तो भीजें चूनडी, नावु तो त्रूटें नेह ।२। भम०
मारें तो आगण पीपळी वाल्हा, उण माहें काळो नाग ।
खाधी हती पण ऊगरी, कुंअर आभाजी रें भाग ॥३॥ भ०
गाडी गुजराती री आवई, माहें भरीयो हाथी रो दात ।
भमरजी ह्वं तो मोळवं, मो नें लाल चूडारी खांति ।४। भ०
इति देशी ॥

पोढो नणदी रा बीरा [१९]

पाळी पुराणी हे, सरोवरीयो म्हारो नित नवोजी ।
हाजी भरीयो हिलोळा लेय, के मोरी सहीआं ए ।

[illegible] के मर के [illegible] नेई मरो [illegible] ।१।

[illegible] दुगानो [illegible] ही [illegible] तो म्हारो नित नवोजी ।
[illegible] चमर मु जान [illegible] चतुर सुजाण के मो० ।२।
[illegible] दुगाना [illegible] सादरी तो म्हारी नित नवीजी ।
[illegible] जग मग जोत के दीवटनें जी जग मग जोत के मो० ।३।
[illegible] दुगानो [illegible] म्हारो नित नवोजी
[illegible] चमर सुजाण जीमण वाळो चतुर सुजाण के मो० ।।४।।

[illegible] दुगानो है पावरणो म्हारो नित नवोजी
[illegible] पोठा नगदी [illegible] के पोटो० के मो० ।।५।।
[illegible] दुगानो है, [illegible] म्हारो नित नवोजी
[illegible] [illegible] मोगी म० इति छ

पता—
नाहटो की गुवाड,
बीकानेर (राजस्थान)

अमरसर (शेखावाटी) सम्बंधी १७ वीं शत[illegible]
के जैन उल्लेख

(श्री अगरचन्द नाहटा)

भारत अनेक प्रदेशो और ग्राम-नगरो मे विभक्त है । प्रदेशो की सी[illegible] बदलती रही है और पुराने नगर एव ग्राम भी उजडते तथा बसते रहे हैं। उनके [illegible] में भी परिवर्तन होता रहा है । मुसलमानी राज्य काल मे बहुत से ग्राम-नगरो के [illegible] शासको ने अपने नामो पर बदल डाले। इसी तरह कई राजाओ और ठाकुरो ने [illegible] अपने शासन मे यथारुचि नये नाम रख दिये । इससे अनेक प्राचीन स्थानो की [illegible] मे बडी असुविधा उत्पन्न हो गई है। किसी-किसी स्थान मे पुराने शिलालेख ता[illegible] आदि मिल जाते हैं तो उस स्थान के प्राचीन नाम का निश्चित रूप से पता चल [illegible] है। परन्तु अैसे पुराने स्थानो के साधन प्राय: नष्ट हो चुके है। बहुत बार अैस[illegible] होता है कि एक ही नाम वाले कई ग्राम-नगर अनेक राज्यो एव प्रान्तो मे [illegible] कभी-कभी तो अेक ही प्रान्त मे पाये जाते हैं तो कौनसा उल्लेख किस स्थान से [illegible]धित है, यह पता लगाना कठिन हो जाता है । लोक प्रसिद्धि मे कई ग्राम-नग[illegible] नाम कुछ और ही मिलते हैं परन्तु लिखा-पढी और सस्कृत ग्रन्थादि मे उनके [illegible] संस्कार किये हुए भिन्न ही देखे जाते है ।

अमरसर राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र का एक नगर है, जो १७ वी शत[illegible] मे काफी अच्छी स्थिति मे था । वहा समय-समय पर जैनाचार्य और विद्वान [illegible] पधारते रहे हैं । कई विद्वानो ने वहा सस्कृत और राजस्थानी भाषा मे रचनाये[illegible] की है । उनसे मालूम होता है कि १७ वी शताब्दी मे वहा १० वे तीर्थंकर शीतल[illegible] का जैन मन्दिर था और दादा जिनदत्त सूरिजी और कुशल सूरिजी के स्तूप तथा [illegible] पादुकायें भी वहां स्थापित की गई थी। खरतरगच्छ के आचार्यों एव मुनियो का [illegible] अधिक प्रभाव रहा है । जैन श्रावको के घर भी उस समय काफी होंगे । आज [illegible] स्थिति में बहुत अन्तर आ गया है। यद्यपि मै स्वयं कभी वहा नही गया, अत: [illegible] स्थिति का ठीक से पता नही हैं।

भूमि अमरसर' नामक प्रकाशित हुआ था। उसके अनुसार सन् १९३४ मे अमरसर में अेक टीले को चौरस किया जा रहा था कि उसमे तीस फीट की गहराई पर सफेद पत्थर की दो मूर्तियाँ मिली। दोनो ही मूर्तियां बिना धड की हैं। उनका केवल स्कन्ध के ऊपर का भाग अर्थात् गर्दन, शिर आदि बचा है। श्री चदेल के मतानुसार ये मूर्तियां कम से कम ८०० वर्ष पुरानी हैं। अमरसर की प्राचीनता और उसके नाम के सदध मे उन्होंने लिखा है कि "अब से १००० वर्ष पूर्व वर्तमान अमरसर से ३-४ फर्लांग की दूरी पर एक सर था। उसी के तट पर अमरिया नामक गूर्जर की ढाणी (नगला) थी। कालान्तर में उसी अमरिया के नाम पर अमरसर विख्यात हुआ। अमरिया की ढाणी के सिलसिले मे जो अमरसर बसा था, वह अब से ४०० वर्ष पूर्व ध्वस्त हो गया बताया जाता है। हा, भूमि मे मिश्रित उसके विविध चिन्ह आज भी इस कथन की सत्यता सिद्ध कर रहे हैं। वर्तमान अमरसर की बस्ती लगभग ६०० वर्ष प्राचीन होने का प्रमाण मिलता है।" आगे चलकर उन्होने लिखा है कि "शेखावत वश के मूल पुरुष शेखाजी को सवत् १४५५ मे १६ वर्ष की अवस्था मे राव मोकलजी के देहावसान हो जाने से ठिकाणे की जिम्मेवारी सभालनी पडी। राव शेखाजी को बच-पन से ही अमरसर का प्रान्त प्रिय था कारण कि प्रथम तो उनका जन्म ही वहा हुआ था। दूसरा, यह इलाका युद्ध के लिये बहुत ही उपयुक्त था। एक तीसरा कारण यह भी कहा जाता है कि शेख बुरहानशाह की कुटिया अमरसर की सीमा मे थी। राव शेखा का जन्म इस शेखजी के आशीर्वाद से हुआ था। अत शेख की कुटिया के पास शेखाजी रहना चाहते थे। रावजी ने गद्दी पर बैठते ही अमरसर मे गढ बनाना शुरू कर दिया, जो लगभग १ वर्ष मे बनकर तैयार हो गया। तब वे अमरसर मे रहने लगे। अमरसर का प्रान्त शेखाजी का स्वतन्त्र राज्य मान लिया गया और पूर्वापेक्षा अमरसर का राज्य अधिक विस्तृत कर दिया गया। इस तरह अमरसर मे शेखावत राज्य की स्थापना हुई। कहते हैं कि कुछ ही दिनो मे अमरसर राज्यान्तर्गत ५५५ गांव होगये। आगे चलकर अमरसर राज्य का कुछ भाग शेखाजी के पुत्रो मे बंट गया। रहा सहा दिल्ली के बादशाह ने छीनकर आमेर राज्य को सौंप दिया। इसके बाद अमरसर केवल एक ठिकाना रह गया, जिसमे केवल ६० गाव थे।"

श्रीचदेल ने अमरसर के दर्शनीय स्थान और तीर्थ के अन्तर्गत दादा-पोता की छतरी का उल्लेख किया है, जो खरतरगच्छ के प्रसिद्ध दादाजी की छतरियां हैं। इनके सम्बन्ध में लिखा है कि "यहा जो दादा-पोता नाम की छतरिया हैं, उनमे जो चरण-पादुकायें बनी हुई हैं, उनके चारों ओर पत्थर पर खुदे हुये लेख इस प्रकार हैं

(१)

... १६५१ वर्षे वैशाख ... ५ दिने श्री
... श्री संघेन ...।
...

... १६६२ वर्षे व
... गणी

उपर्युक्त लेख नं० दो मे वाचन।
... १६५४ में सावन मे अमरसर चौमासा ५
चौपाई की रचना की, जिसका अन्तिम पद्य इस प्रकार है-

... चमासा श्रावण धुरई, नयरि अमर सरि सार
... आणंद भगति भरई, भणतां सब सुखकार ॥५

... के अनुसार श्री जिनकुशल सूरिजी की पादुका सवत् १६..
... अमरसर वास्तव्य श्री संघ ने बनवाई। इस लेख मे मन्त्री कर्मचन्द
... आता है। यह लेख अशुद्ध छपा है। मंत्रीश्वर कर्मचन्द बीकानेर के राजा
... के मन्त्री थे और आगे चलकर सम्राट अकबर से भी सम्मानित हुये थे। वे
श्री जिनकुशल सूरिजी के परम भक्त थे। अतः सम्भव है कि वे अमरसर की इस
... पादुका के बनाने के प्रेरक हों। श्री जिनकुशल सूरिजी के थंभ का उल्लेख
... समयसुन्दरजी ने अपने श्रीजिनकुशल सूरि गीत मे किया है—

... हरिख दादा, श्रीजिनकुशल करि सुप्रसादा ।
... मिगलउ जपइ जसवादा ।दा।१

... नृपति उदारा, ... तणा ... अवतारा ।
... परिवारा, ते सह तेज प्रताप तुम्हारा ।दा।२

... विस्तारा, ... नइ तूं आधारा ।
... मनवछित ... पूरि हमारा ।दा।३

नयर अमरसर शुभ निवेशा, अनिद्धि घणी प्रगटी परमेसा ।
सेव करइ सद्गुरु सुविशेषा, एह समयसुन्दर उपदेशा ॥ ४

कविवर समयसुन्दरजी ने संवत् १६६५ मे चैत सुदि १० को अमरसर मे चातुर्मासिक व्याख्यान संस्कृत मे रचा था —

"श्री मद्विक्रम भवति, बाणरस अमर चरण शशि सङ्ख्ये ।
श्रीअमरसरसि नगरे, चैत्र दशम्या च शुक्लायाम् ॥"

समयसुन्दरजी के उल्लेखानुसार युगप्रधान जिनचन्द्र सूरिजी के पट्टधर जिनसिंहसूरिजी अमरसर महिने भर रहे थे । साह थानसिंह के आग्रह से उनके संबध मे एक गीत उन्होने बनाया, जो इस प्रकार है —

अमरसर अब कहउ केती दूर ।
पगि पगि पगि पथियन कू पूछत, आये आणद पूर ॥ अ० १॥

पातसाह अकबर के माने, जिहा श्री जिनसिंह सूरि ।
मास कल्प राखे आग्रह करि, थानसिंह साहि सनूरि ॥ अ० २॥

गुरु के पद पकज प्रणमत ही, भाजि गये दुख दूरि ।
समयसुन्दर कहइ आज हमारे- प्रगटयइ पुण्य पडूरि ॥ अ० ३ ॥

अमरसर मे, जैसा कि पहले कहा गया है, शीतलनाथजी का मन्दिर था । उसके सान्निध्य मे संवत् १६७६ के आश्विन पूर्णिमा बुधवार को खरतरगच्छ के विशिष्ट विद्वान् उपाध्याय सूरचन्द्र ने 'जैन तत्व सार' नामक महत्वपूर्ण स्टीक ग्रंथ की रचना की —

अमरसरसि वर नगरे, श्री शीतलनाथ लब्धि सान्निध्यात् ।
ग्रन्थोऽग्रन्थि समंथः सुविदेऽयं सूरचन्द्रेण ॥ १४ ॥

अमरसर उस समय श्रेष्ठ नगर माना जाता था । उपर्युक्त श्लोक की टीका मे लिखा है—' वर नगरे—श्रेष्ठ पुरे, 'अमरसरसि'— अमरसरो नाम्नि' 'श्री शीतल नाथ लब्ध सान्निध्यात् – श्री शीतलनाथ मूल नायकस्य सान्निध्य प्राप्य सूर चन्द्रेण —सूरचन्द्र नामा मया, 'सुविदे'— ज्ञानाय, अल्पधियामर्हन् सिद्धान्त ज्ञानाय'

उपर्युक्त शीतलनाथ का भावपूर्ण स्तवन कविवर समयसुन्दरजी ने बनाया है, जो नीचे दिया जा रहा है —

(१)

[illegible] १६५३ वर्षे [illegible] दिने श्री जिन कुशल सूरि [illegible] पादुक [illegible] श्री [illegible] मूल स्तूत प्रारित कप्ता मन्त्री कर्मचन्द्रः श्री [illegible] चेप्टितम् युगे अक्षेः।"

(२)

[illegible] १६६२ वर्षे [illegible] वदि ५ दिन सोमवारे श्री खरतरगच्छ वाचनार्यश्च [illegible] सोम [illegible] पादुका प्रतिष्ठितेय सया माम श्री जिन चन्द्र सूरिः [illegible]

[illegible] लेख नं० दो मे वाचनाचार्य कनकसोम का नाम आता है । उन्होने [illegible] १६४४ में [illegible] मे अमरसर चौमासा करते हुए ४८ पद्यो को 'आर्द्रकुमार [illegible]' की रचना की, जिसका अन्तिम पद्य इस प्रकार है:—

> [illegible] नयरि अमर सरि मार ।
> [illegible] भणतां सब सुखकार ॥४८॥

[illegible] के अनुसार श्री जिनकुशल सूरिजी की पादुका सवत् १६५३ [illegible] ५ को अमरसर वास्तव्य श्री सघ ने बनवाई । इस लेख मे मन्त्री कर्मचन्द [illegible] अशुद्ध छपा है । मन्त्रीश्वर कर्मचन्द बीकानेर के राजा [illegible] और आगे चलकर सम्राट अकबर से भी सम्मानित हुये थे । वे [illegible] के परम भक्त थे । अत. सम्भव है कि वे अमरसर की इस [illegible] बनाने के प्रेरक हों । श्री जिनकुशल सूरिजी के थंभ का उल्लेख [illegible] ने अपने श्रीजिनकुशल सूरि गीत में किया है —

> [illegible] दादा, श्रीजिनकुशल करि सुप्रसादा ।
> [illegible] जपइ जसवादा ।दा।१
>
> [illegible] प्रवनारा ।
> [illegible] तेज प्रताप तुम्हारा ।दा।२
>
> [illegible] आधारा ।
> [illegible] पूरि हमारा ।दा।३

नयर अमरसर शुभ निवेशा, प्रनिद्धि घणी प्रगटी [illegible] ।
सेव करइ सद्गुरु सुविशेषा, गइ समयसुन्दर [illegible] ॥ [illegible]

कविवर समयसुन्दरजी ने संवत् १६६४ मे चैत सुदि १० को [illegible] चातुर्मासिक व्याख्यान संस्कृत मे रचा था —

"श्री मद्विक्रम भवति, वागाग्न अमर [illegible] ।
श्रीअमरसरसि नगरे, चैत्र दशम्या च [illegible] ॥"

समयसुन्दरजी के उल्लेखानुसार युगप्रधान जिनचन्द्र सूरिजी ने [illegible] जिनसिंहसूरिजी अमरसर महिने भर रहे थे । साह थानसिंह के [illegible] संबंध मे एक गीत उन्होने बनाया, जो इस प्रकार है ---

अमरसर अब कहउ केती दूर ।
पगि पगि पगि पथियन कू पूछत, आये आणद पूर ॥ [illegible]

पातसाह अकबर के माने, जिहा श्री जिनसिंह सूरि ।
मास कल्प राखे आग्रह करि, थानसिंह [illegible] सनूरि ॥ [illegible]

गुरु के पद पकज प्रणमत ही, भाजि गये दुख भूरि ।
समयसुन्दर कहइ आज हमारे- पवटपद पुण्य पडूरि ॥ [illegible]

अमरसर मे, जैसा कि पहले कहा गया है, शीतलनाथजी का मन्दिर [illegible]

उसके सान्निध्य मे संवत् १६७९ के आश्विन पूर्णिमा [illegible] के विशिष्ट विद्वान् उपाध्याय सूरचन्द्र ने 'जैन तत्व सार' नामक [illegible] की रचना की'—

अमरसरसि वर नगरे, श्री शीतलनाथ [illegible] ।
ग्रन्थोऽग्रन्थि समंथ, सुविदेऽय सूरचन्द्रेण ॥ १४ ।

अमरसर उस समय श्रेष्ठ नगर माना जाता था । उपर्युक्त [illegible] मे लिखा है—' वर नगरे—श्रेष्ठ पुरे, 'अमरसरसि'— अमरसरो नाम्नि' [illegible] नाथ लब्ध सान्निध्यात् — श्री शीतलनाथ मूल नायकस्य [illegible] —सूरचन्द्र नामा मया, 'सुविदे'— ज्ञानाय, अल्पधियामर्हन [illegible]

उपर्युक्त शीतलनाथ का भावपूर्ण स्तवन [illegible] है, जो नीचे दिया जा रहा है —

[illegible] दाम कि माना पुण्य सुरमणि, एहनी ।
[illegible] कि, दीनति सुणि एक मोरडी
[illegible] कि मार सुणी मई तोरडी । मो० ।१।
[illegible] पाडइ पणि कि, मुम्ह मनि आसा छइ घणी ।
[illegible] दाम कि, तूं सुणिजे त्रिभुवन धणी । मो०।२।
[illegible] समरि कि, दुहु धनना मइ गह्या ।
[illegible] कि, मइ त्रिम जायइ ते वहया ।मो०।३।
[illegible] अवतार कि, इरमण नयणे निरखियउ ।
[illegible] नरिस्त कि, हीयडउ हेजइ हरखियउ ।मो०।४।
[illegible] पातकि, तुम्ह विण देव बीजउ नही ।
[illegible] कि, तउ काच ग्रहइ नही को सही ।मो०।५।
[illegible] तीर, तउ खलि खावा किम मन थियउ ।
[illegible] कि तडगाग्ड जळ कहउ कुण पीयइ ।मो०।६।
[illegible] कि, तउ चिरमठि कुण पहिरइ हियइ ।
[illegible] गन्ध, ते ढाज काढी दाम त्रिमलीयइ ।मो०।७।
[illegible] तउ देसानरि कहउ कुण भमइ ।
[illegible] तउ राबुवादि नइ कुण धमइ ।मो०।८।
[illegible] तउ मणिहारी मनि किम गमइ ।
[illegible] तउ के नृ कारचउ किम समइ ।मो०।९।
[illegible] कि, हूँ सेवक प्रभु साहरउ ।
[illegible] प्रमान कि, सब दुख भागउ माहरउ ।मो०।१०।
[illegible] कि, समोवसरण सुम्ह मासरउ ।
[illegible] कि सुणिन ते मानउ करउ । मो० । ११ ।
[illegible] जिम नगिचद चकारडा ।
[illegible] कि, मेह आगम जिम मोरडा । मो० । १२ ।
[illegible] कि जिम दिन ऊगइ चोरडा ।
[illegible] कि, मनवंछित फलइ मोरडा । मो० । १३ ।
[illegible] कि, जिम जिम नन्द निहोरडा ।
[illegible] कि, चरण न छोडु तोरडा ।मो०।१४।

कलशः— इम अमरसर पुर संघ सुखकर मात नदा [illegible] ।
सकलार्थ शीतलनाथ सामी, सकल [illegible] [illegible] ।
श्रीवच्छ लछण वरण कचण, रूप सुदर [illegible] ।
ए तवन कीधउ समयसुदर, सुणत जनमन [illegible] ॥[illegible]॥

इति श्री अमरसर मडन श्री शीतलनाथ वृहत्स्तवन सपूर्ण [illegible] ।

खरतरगच्छ के आचार्य जिनसागर सूरि ने अपनी माता सहित स [illegible] के माघ मास मे अमरसर मे दीक्षा ग्रहण की थी। बीकानेर से जिनसिंह [illegible] अमरसर पधारे थे, वहा सामायक पोषधादि कर्म कृत्य हुए। श्रीमान [illegible] ने, जिसका उल्लेख अन्यत्र भी आ चुका है, जिनसागर सूरि का दीक्षा महोत्सव [illegible] धूमधाम से किया और रुपए खर्च किए। इसका उल्लेख जिनसागर सूरि रास [illegible] प्रकार पायाजाता है —

राग देसाख

दोहा— वड भाई विक्रम सहित, मात भणइ सु (तु) [illegible] ।
करिसु आत्मारावना, जिनसिंह सूरि गुरु [illegible] ॥[illegible]॥
दूध माहि साकर मिली, पीता आणद [illegible] ।
वचन सुणि निज मातना, हरखउ कुमर मनि [illegible] ॥[illegible]॥
विक्रम पुरथी अनुकमइ, सदगुरु करइ (य) [illegible] ।
अमरसर पउधारिया, श्री जिनसिंह [illegible] ।
सामाइक पोसउ करइ, पडिकमणउ गुरु [illegible] ।
सजम लेवा कारणइ, कुमर मनई [illegible] ॥[illegible]॥
श्री अमरसर सघ तिहाँ, हरखित थमउ [illegible] ।
वाजित्र वाजइ नवनवा, [illegible] [illegible] ॥[illegible]॥
श्रीमालवशि सहामणउ, थानसिंह [illegible] [illegible]
सजम उछव करणइ, खरचइ तिहा [illegible] [illegible] ॥[illegible]॥
सवत सोळ इकसठइ, माह मासि [illegible] [illegible]
मात सहित दिक्षा लीयइ, पहुती मननी [illegible] ॥[illegible]॥
तिहाथी चारित्त लेइ नइ, सदगुरु साथि [illegible]
विद्या सीखइ अति घणी, [illegible] [illegible] [illegible] ॥[illegible]॥

(जिनसागर सूरि रास, [illegible])

[illegible] माता [illegible] ।
[illegible] धर्म [illegible] ॥
[illegible] माता [illegible] ।
[illegible] अमर [illegible] ॥
[illegible] पूरण [illegible] ।
[illegible] [illegible] ॥

[illegible] कवि विमलकीर्ति ने अभयदान के विषय में [illegible] रचना [illegible] में की थी, जिसकी प्रशस्ति में वहां के [illegible] भी उल्लेख है

[illegible] सुणीय प्रवीण ॥२९॥
[illegible] [illegible], [illegible] जिण नाह ।
[illegible] सुणी [illegible], [illegible] ॥३०॥

[illegible] १६८० में यहां शिवनिधानोपाध्याय 'कल्पसूत्र बालावबोध' [illegible] प्रशस्ति के प्रथम श्लोक में इस प्रकार उल्लेख किया

[illegible] प्रमित वर्षे
[illegible] पञ्चमी सुदिने १

[illegible] श्वेताम्बर समाज में प्रतिवर्ष पर्यूषणों में वाचा जाता है। उसकी [illegible] काफी विस्तृत (जैन गूर्जर कविओ भाग ३ के [illegible] वर्णित है। उसकी रचना में पर्याप्त समय लगा होगा। [illegible] परम्परा में हुए हैं। उनकी मध्यवर्ती परम्परा में मेरु- [illegible] भी राजस्थानी गद्य में बहुत से बालावबोध लिखे हैं। शिवनिधान [illegible] भी [illegible] में कार्तिक सुदि १३ को पूर्ण किया।

Reprinted From—

THE RESEARCHER

(A Bulletin of Rajasthan's Archaeology & Museums)

Editor
Dr. Satya Prakash

VOLUME—VII—IX

YEAR
1966—68



Published by

The Directorate of Archaeology & Museums,
Government of Rajasthan, Jaipur.

की सिंदूरादि से लिप्त इस प्रतिमा के आयुधादि यद्यपि पूर्णरूपेण परिचीयमान नहीं है फिर भी दस हाथ स्पष्ट है जिनमे से दो वरद व अभय मुद्राओं मे है और शेष आठ हाथो मे ध्यानपूर्वक देखने से दन्त, पाश, परशु, मुद्गर, मोदक, त्रिशूल, अंकुश व अक्षसूत्र प्रतीत होते हैं । इसके विपरीत नेगपत्तन् के नीलायताक्षीयम्मन् मंदिर की कास्य हेरम्बगणपति प्रतिमा के पंचमुखों मे चार मुख चारो दिशाओं मे बने हुए हैं और पाचवा मुख इनसे ऊपर मस्तक पर है तथा डाक्टर श्री जनार्दन मिश्र ने अपनी भारतीय प्रतीक विद्या नामक पुस्तक मे पृष्ठ ४१८ पर जो चित्र संख्या ६ "घ" (सिंह वाहन विनायक) का विवरण दिया है वह प्रतिमा नागपत्तनम् (दक्षिणा.थ) के कयरोगण स्वामी मन्दिर की बताई गई है और उसका मध्यवाला मुख गजमुख और पार्श्ववाले दो मुख वराह के बताए है किंतु गणेश के वराह मुखो का प्रमाण देखने मे नही आया है और न इनके तीन मुखो का ही प्रमाण मिलता है अत: इस विषय मे विद्वानो से प्रकाश की अपेक्षा है । अनुमानतः "भारतीय प्रतीक विद्या" मे उल्लिखित प्रतिमा भी उपरोक्त नेगपत्तम् के नीलायताक्षीयम्मन् मन्दिर की हेरम्ब गणपति प्रतिमा की भाति किसी समय पूर्ण रूपेण गजमुखो ही रही ही और बाद मे—सू ड भागो के खण्डित हो जाने से सम्भवतः पार्श्व के दोनो मुख अब वराह जैसे प्रतीत होते हैं क्योकि चित्रसाम्य से उपरिनिर्दिष्ट दोनो प्रतिमाएं प्रायः एक सी प्रतीत होती है । श्री भट्टाशाली ने भी अपने केटेलोग मे ढाका के समीप स्थित रामपाल की एक हेरम्ब गणपति प्रतिमा का उल्लेख किया है जिसकी प्रभावलि मे गणेश की ६ छोटी प्रतिमाएं निर्मित हैं जो सम्भवतः गाणपत्यो की ६ प्रमुख शाखाओं की प्रतीक है ।

(२१) उपरोक्त भेदो से भिन्न प्रकार की एक आसीन केवल गणेश प्रतिमा (१६वी शती) श्री दरबार कोटा के गढ मे प्रतिष्ठित है—

उत्तरकामिकागम के अनुसार—

> स्वदन्त परशु कुर्यात् स्वदक्षिण करद्वये ।
> लड्डुक वाक्षमाला च वामपाणावथोत्पलम् ॥

यह अपने ऊपर के दाहिने हाथ मे परशु, नीचे के दाहिने हाथ मे दन्त, ऊपर के बाएं हाथ मे कमल और नीचे के बाएं हाथ मे माला रखती है ।

(२२) एक अन्य द्विभुजी गणेश प्रतिमा वीरासन मे आवेशपूर्वक परशु से आक्रमण: करती हुई गांगोवी स्थान से कोटा संग्रहालय मे प्राप्त हुई है । सम्भवतः यह परशुराम के साथ हुए युद्ध का प्रतीक है।

इस प्रकार प्रस्तुत लेख मे गणेश प्रतिमा क प्रमुख भेदो का विवरण प्रस्तुत किया गया है । अग्रिम लेख मे गणेश की प्राचीनता और उनका तथाकथित यक्षादि रूपो मे अन्तर्भावादि की सम्भावना तथा गणेशी देवी पर विचार किया जावेगा ।

नागौर के बंशीवाला मन्दिर की प्रशस्ति

भंवरलाल नाहटा

[illegible] एक ऐतिहासिक और प्राचीनतम स्थान है। *संस्कृत [illegible] ही के पर्याय हैं। प्राचीन काल में यह परगना सपादलक्ष देश [illegible] हिन्दू व मुस्लिम वंशों का राज्य रहा है और नाना प्रकार [illegible] इसी कारण यहां के प्राचीनतम देवालय और अभिलेख लुप्त [illegible] में नागौर का उल्लेख नवीं, दसवीं शताब्दी से पाया जाता है। [illegible] उल्लेख सर्व प्राचीन है। जयसिंहसूरि ने सं० ९१५ में यहाँ [illegible] की रचना की थी, उस समय नागौर में अनेक जिनालय थे। और [illegible] में नागदत्त ने श्री महावीर जिनालय की प्रतिष्ठा की थी। ऐसा उल्लेख [illegible] 'जिनमंदिराणि नागउरे गेगाणि' वाक्यों से धर्मोपदेश माला विवरण में किया [illegible] यहाँ से सुप्रसिद्ध जैनाचार्य जिनवल्लभसूरि, वादिदेव सूरि और दादा [illegible] का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जिनवल्लभसूरि ने यहाँ नेमिनाथ [illegible] की प्रतिष्ठा की थी। ओसवालों में नागौरी गोत्र तथा नागपुरीय तपागच्छ व [illegible] भी नागौर से ही सम्बन्धित है।

[illegible] नागौर में कोई भी देवालय पन्द्रहवीं शताब्दी से प्राचीन नहीं बच [illegible] ने लिखा है कि बादशाह औरंगजेब ने जितने मन्दिर यहाँ तोड़े [illegible] मस्जिद ने तोड़े। इसी कारण यहां के कई फारसी लेख शहरपनाह [illegible] अब तक विद्यमान हैं।

[illegible] सुल्तान मुजफ्फर खाँ ने अपने भाई शम्सखाँ को नागौर की जागीर दी [illegible] उसने नाम से शम्स मस्जिद व शम्स तालाब बनवाये तथा उसके बेटे [illegible] नागौर का स्वामी होकर एक बड़ी मस्जिद का निर्माण करवाया जिसका [illegible] के नागौर विजय करते समय नष्ट कर दिया था।

नागौर में बहुत से हिन्दू मन्दिर हैं जिनमें अधिकांश नव्यनिर्मित हैं। प्राचीन [illegible] गोपीनाथ का मन्दिर है जिसके स्तंभों पर सुन्दर खुदाई का काम है।

---

* [illegible] "नागौर १९६४" में सं० १२११ वैशाख सुदि ३ को चौहान [illegible] नागौर की स्थापना की, लिखा है, पर वास्तव में नागौर बहुत [illegible]

इसके स० १६१८ और म० १६५६ के दो लेख बच पाये हैं। प्राचीनता की दृष्टि से वशीवाला मन्दिर महत्वपूर्ण है। यह बहुत ही विशाल अहाते में बना हुआ है। सामने बहुत बडा चौक है जिसमें हजारो व्यक्ति बैठ सकते हैं। इसमें शिव और मुरलीधर के दो मन्दिर हैं, दोनों के ऊचे शिखर आस पास सुशोभित हैं। इसके स्तंभ आदि पुराने हैं, अवशिष्ट काम नया प्रतीत होता है। शिव मन्दिर में फर्श से २५ सीढो नीचे उतरने पर शिव लिंग आता है। शकर कुण्ड मे पर्याप्त अन्धकार रहता है। ये मन्दिर प्राचीन हैं। इनका निर्माण कब हुआ ? प्रमाणाभाव मे नही कहा जा सकता, पर मन्दिर मे प्रवेश करते ही बांयी ओर कुछ प्रतिमाएं रखी हुई है जिनमे से एक श्वेत सगमर्मर की प्रतिमा पर स० १५३३ मिती मार्गशीर्ष वदि ५ दुधवार का अभिलेख है, जिसमे नागौर के मूंधडा माहेश्वरी वशीय सद्‌गृहस्थ द्वारा प्रतिमा निर्माण कराने का उल्लेख है।

विमलेश्वर और मुरलीधर जी के मन्दिर के बीच दीवाल पर एक २० पक्ति का अभिलेख लगा हुआ है जो मन्दिरो के जीर्णोद्धार के समय का है। इस लेख में ११ श्लोक और अवशिष्ट आठ पंक्तियाँ गद्यात्मक है। इससे विदित होता है कि पहले ये मन्दिर संकीर्ण स्थान में बने हुए थे एवं विष्णुदास के पुत्र नरसिंह द्वारा जीर्णोद्धारित होते हुए भी कालवश जीर्ण शीर्ण हुए देखकर त्रिपुरदास लोहिया माहेश्वरी के पुत्र गोपाल ने द्रव्य भण्डार एकत्र किया। पंचो तथा नागपुर के सभी भक्त वैष्णव महाजनो ने अपनी अपनी शक्ति के अनुसार द्रव्यदान किया। दान के द्रव्य और भण्डार के द्रव्य को मिलाकर सं० १६६६ में मंदिरों का जीर्णोद्धार हुआ, और भूमि मिलाकर मन्दिरो को विशाल बनाया। सं० १६७० मिती फाल्गुन सुदि ५ गुरुवार के दिन मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई। स० १६७१ मिती पौष शुक्ला १३ सोमवार मृगशिरा नक्षत्र में देवालय पर कलश स्थापन हुआ। इस समय बादशाह जहांगीर के राजकाल के साथ साथ राणा शगरजी के प्रति राज्य के उल्लेख हैं, जो तत्कालीन नागौर के जागीरदार मालूम देते हैं। इस जीर्णोद्धार में लोह्या-महेश्वरी त्रिपुरदास के वंशजों का विशेष हाथ था उनके पुत्र गोपाल का नाम ऊपर आया ही है अन्त में दूसरे पुत्र गदाधर के पुत्र नारायणदास लोह्या एव सूत्रधार पीरमहमद अजमेरी का भी उल्लेख है, यह प्रशस्ति मिश्र जोद्धा ने लिखी है। यह लेख सस्कृत में है।

इस लेख के पास ही अर्द्ध शताब्दी पूर्व का एक छोटा लेख आधुनिक राजस्थानी भाषा में खुदा हुआ है जिसमें बशीवाला मदिर के सभा मण्डप व परिक्रमा में सुनार मोतीलाल के मकराना जड़वाने एवं शिवदास- बामणीया सुनार द्वारा तीन तोला सोने की कण्ठी भेंट करने का उल्लेख है। यह लेख इस प्रकार है।

"श्री श्री १००८ श्री बंशीवाला-र मिंदर मांय सत्रा मंडप परकमा-मकराणो जडायो दास। सुनार मोतीलाल छेडा सीवदास राजा का छापरवाल बामणीया कंठी एक सोनारी जडाउ तोला तीन करदासुधी श्री ठाकुरजी रो उछव कराय ने भेट कीनी। समत १९७५ पोष सुद १३ मंगलवार॥ दसकत व्यास नानूराम बहादरदास का नाथवत ब्यास"।

[illegible] में प्रकाशित है। राजाओं तथा [illegible] में प्रकाशित हो चुके हैं पर माहेश्वरी [illegible] में आने वाले ऐसे लेखों की खोज अब [illegible] पूर्वक उनको प्रकाशित किया जा [illegible] प्रकाश में लाना चाहिए।

[illegible] इस प्रकार है—

[illegible] नमः ॥
[illegible] नमन नित ।
[illegible], राजन्त मन्दिरे वरं ॥१॥
[illegible] ।
[illegible], नवनिपुर वासिना ॥२॥
[illegible], सर्व पापहर हरिम् ।
[illegible], नागपुरे वरे ॥३॥
[illegible] पुरे [illegible] नाम, देवालय वै त्रिमलेश्वरस्य
[illegible], दामात्मजो विष्णु जनः प्रधानः ॥४॥
[illegible] जीर्ण,
[illegible] मतिमान् बहु द्रव्य साध्यं
[illegible] रघुपुरात्मजो मो
[illegible] पाद सरोज नीरे ॥५॥
[illegible] गोपाल रघुपुरात्मज
[illegible] महत् ॥६॥
[illegible] पुण्यं कृतम् ।
[illegible] मतन् ॥७॥
[illegible] द्रव्य वासिनः ।
[illegible] पन्यापुर वासिनः ॥८॥
[illegible] न ।
[illegible] यथा ॥९॥
[illegible] न जिने गुणे ।
[illegible], गुना ॥१०॥
[illegible], मासि सिते फाल्गुने
[illegible] प्रतिष्ठापनम्
[illegible] देवालयोद्धारकान्
[illegible] मुदम् ॥११॥

[illegible] चन्द्रवारे मृगशिर नक्षत्रे पातिसाह [illegible] राणा श्री संगरजी प्रतिराज्ये [illegible] महाजनान् माहेश्वरजातान् समाहूय

स्वशक्त्या द्रव्यमेकीकृत्य भाडार द्रव्ये मेलयत्वा श्री मुरलीधर विमलेश्वरयो. जीर्ण देवालयोर्द्धारः कृत पूर्व सकीर्णतां दृष्टवा नवीनां तुतगृहीत्वा हरे मन्दिरोद्धृत रचनाभिरकारि। श्री शकर कुण्डोपि वा प्रतोल्या भुव गृहीत्वा पूर्व सकीर्णोविस्तीर्णोद्धृत तरः कृतः पच महाजनानां महती श्रद्धा उद्धरणे मन्दिर रचनाया उपरितनो श्री कृष्ण प्रेमवान्न वैष्णव त्रिपुरदासात्मज गदाधर पुत्रो नारायणदास लोह्या ज्ञाति सूत्रधार अजमेरी पीर महमदः शुभ भवतु ॥ सर्व महाजन संघश्चिर जीवतु ॥ लिखावत मिश्र जोद्धा ॥ श्री ॥

श्री ओझा जी ने अपने जोधपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृष्ठ ४१ मे लिखा है—"यहाँ हिन्दू मन्दिर वहुत हैं किन्तु उनमे से अधिकाश नये हैं, प्राचीनता की दृष्टि से एक ही हाते मे पास-पास बने हुए शिव और मुरली के मन्दिर महत्त्व के हैं। इनके स्तम्भ आदि पुराने हैं, शेष काम नया है। शिव मन्दिर के फर्श से २५ सीढी नीचे उतरने पर शिवलिंग आता है। तीसरा वरमाया का मन्दिर है जो योगिनी का माना जाता है. इसके प्राचीन स्तम्भो पर सुन्दर खुदाई का काम है। इनमे से तीन पर लेख खुदे हुये थे जिनमे से एक तो विगाड दिया गया है, शेप दो पर स १६१८ जेठ वदि १३ और सं १६५६ चैत्र सुदि १३ के लेख हैं।

"अजमेर पर मुसलमानो का आधिपत्य होने के कुछ समय बाद नागौर पर भी उनका अधिकार होगया, तब से प्राचीन मन्दिर आदि नष्ट किये जाने लगे।"

नागौर के प्रसिद्ध वशीधर वाले मन्दिर का चित्र 'नागौर १६६५" के पृष्ठ २६ मे छापा है। अब उपरोक्त मन्दिर की प्रशस्ति का साराश नीचे दिया जा रहा है:—

श्री मुरलीधर और शकर को नमस्कार हो। नागपुर स्थित लक्ष्मीपति मुरलीधर और भगवान शकर भक्तो के सकल मनोरथ पूर्ण करने वाले, सर्व पापो का हरण करने वाले, भुक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाले हैं, वे नागपुर निवासियो का सर्वदा कल्याण करें और पुत्र, लक्ष्मी, राज्यादि प्रदान करें।

पूर्व मे विष्णुदास के पुत्र नरसिंह ने विमलेश्वर के मन्दिर को पुरातन देखकर इनका जीर्णोद्धार करवाया था, वह भी काल के प्रभाव से अति जीर्ण होगया। इसका पुनः उद्धार करवाना आवश्यक था, किन्तु यह कार्य वहुत द्रव्य की अपेक्षा रखता था, इसलिये त्रिपुरात्मज गोपाल ने 'हरिपादसरोजतीरे' (वृन्दावन) मे कोश एकत्रित किया।

लोहिया ज्ञातीय नरश्रेष्ठ त्रिपुर सुत गोपाल ने महाजनो के सहयोग से यहा द्रव्य-भडार करवाया। अहिपुर निवासी वैष्णव भक्तो, और मुख्य पचो ने भी अपनी शक्ति के अनुसार इस कार्य मे द्रव्य दिया।

जिस प्रकार श्री कृष्ण ने विदुर के यहा 'शाक' को प्रेम से स्वीकार किया था वैसे ही हरी और शकर ने केवल भक्तो द्वारा प्रदत्त धन ही स्वीकार किया, अन्य अभक्तो का धन स्वीकार नही किया।

सवत् १६६६ श्रावण (इपु) शुक्ला १० गुरुवार को महाजनो ने जैन मन्दिर का उद्धार किया। सवत् १६७० फाल्गुन सुदि ५ गुरुवार को भगवान विष्णु की प्रतिष्ठा की। यह नागपुर का देवालय

[illegible], [illegible] के उद्धारों को [illegible]

[illegible] ११ [illegible] में, [illegible]शाह, श्री नूरदी महम्मद [illegible] के [illegible] में देवालय के कलश की स्थापना हुई। शुभ।

[illegible] जनों (शिवभक्तों) को बुलाकर, अपनी शक्ति के [illegible] को मिलाकर मुरलीधर तथा विमलेश्वर के जीर्ण देवालयों की [illegible] देखकर नवीन भूमि खरीदकर हरि के मन्दिर को अद्भुत [illegible] उनको भी प्रतोली की जमीन ग्रहण कर विस्तृत एवं [illegible] उद्धार एवं रचना में महाजन पंचों की महती श्रद्धा है जिसका मुख्य [illegible] त्रिपुरदास का पौत्र, गदाधर का पुत्र नारायणदास; [illegible]। समस्त महाजन मन चिरकाल जीवित रहो। मिश्र जोधा ने यह

बेटो-तीजो वेर रिण में राखि राडि करि रहीयो ॥
वाहडमेर आयो पाधरो साहिजादै सोच विचारीयो ।
दुरंगने पाटण राषि ने साहिजादो पातसाह् पासि पधारियो ।११५।

इनके अतिरिक्त विभिन्न पत्रों के शीर्ष, पाद, वाम अथवा दक्षिण पाश्वो के हाशियो में लगभग ४७ पद सईकी के और भी प्राप्त हैं।

सईकी की अन्तिम पुष्पिका निम्न प्रकार है–

इति अठारमा सईका री सईकी सम्पूर्ण

लिपि कृता कथिता वाचक जयचंद्रेण श्री रस्तु लेखकस्य

सम्मति

कहते हैं कोई एक अनाथ बालक अपनी ही दृष्टि में हीन बना असहाय-सा घूम-फिर रहा था। दैवयोग की बात ! किसी व्यक्ति ने उसे बताया–वह राजकुमार है—अतुल धन-राशि का स्वामी। प्रमाण स्वरूप उसने एक खडहर भी दिखाया, जो उसके राजमहल का भग्नावशेष था। खोदने पर जो धनराशि मिली, वह असीम थी।

भारतीय भाषाओ का जनसाहित्य भी, फिर चाहे वह प्राचीन हो अथवा अर्वाचीन, अमूल्य है, अद्भुत है; किन्तु अब तक वह प्रकाश मे नही आया है। प्रकाश में आने पर उप-रोक्त राजकुमार की भाँति ही हम भी गौरवान्वित हो सकते है।

यह सन्तोष का विषय है कि अब विद्वानों का ध्यान शोध कार्य की ओर गया है और वह दिन दूर नही है जब विभिन्न जनपदीय भाषाएँ इस असीम ज्ञानराशि को पाकर अपार महिमा से मंडित बनेंगी।

'मरु-भारती' यही कार्य कर रही है। यह सौभाग्य की बात है कि उसे समर्थ विद्वानो का सहयोग प्राप्त है। मेरा विश्वास है कि मरु-भारती अपने शोध कार्यों द्वारा राजस्थानी साहित्य की छिपी हुई ज्ञानराशि को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करने मे सफल होगी।

—श्रीरामेश्वर दयाल दुबे

द्यतन अप्राप्त वंशावली

—श्रीमती कृष्णा गोहलोत

ग्राप्त पक्का से ग्रन्थ को ढाई या तीन सौ
ा मानना सदिग्ध नहीं है। ग्रंथ में नवत्
र्व के ऐतिहासिक पुरुषों का परिचय
ं १८२५ के पश्चात् की किसी भी घ
ाक्ति का उल्लेख गुटके में नहीं हुआ है।

❋ गीत ❋

हड़ रो रायपाल मोहणघर सुभट
(१) (२) (३ (४)
ोनद माहुल गहन देवो सेः
(६) (७) (८) (९
मरसी मेहराज श्रीचन्द भोज
(१०) (११) (१२) (१३)
ानू वस्ता अकलवले मोहण
(१४) (१५) (१६)
ाचित नगा मूजा अचला वडम जैस उदीस
(१७) (१८) (१९) (२०) (२१)
ेणा वद जैमल तणा नीर चढावे
(२२)

आचार्य बदरीप्रसाद साकरिया ने अपनी
मे जैमल का मोहण जी की २० वीं पी
बताया है जो प्रस्तुत गीत मे भी २० वीं पी
नैणसी के पिता का नाम है। इसके अतिरि
ने नैणसी के जीवनवृत्त में लिखा है कि "
राठोड़ राज्य की नीव डालने वाले राव स

प्रकाशक–राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठा
३—'मुंहता नैणसी री ख्यात', पृष्ठ २६,
सम्पादक-आचार्य बदरीप्रसाद, साकरि
प्रकाशक–राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठ

उनके पुत्र राव आसथान हुए । राव आसथान के पौत्र राव रामपाल हुए ।[1] लेखक ने भूमिका में राव रामपाल के पिता का नाम नही दिया, जो कि राव धूहड है । प्रस्तुत गीत में राव रामपाल के पिता का नाम धूहड तथा पुत्र का नाम मोहण दिया है जो आचार्य की भूमिका से पूर्ण रूप से मेल खाता है । इससे स्पष्ट है कि प्रस्तुत गीत में संदिग्धता का कोई स्थान नहीं है ।

नैणसी के पूर्वजों के सम्बन्ध में जितना भी विवरण प्राप्त है उससे थोडी भी अधिक जानकारी प्रस्तुत गीत से उपलब्ध हो सकेगी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगी ।

१—मुंहता नैणसी की ख्यात भाग ४, पृष्ठ २५।
सम्पादक—आचार्य बदरीप्रसाद साकरिया ।
प्रकाशक—राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

सम्मति

मरु-भारती अपने ध्येय की पूर्ति करने में सदा जागरूक रही है । लोक-गीत, लोक-कथाओ तथा लोकोक्तियो का विशिष्ट संग्रह समय-समय पर पत्रिका द्वारा प्रकाशित हुआ है । कुछ प्रसिद्ध राजस्थानी कथाएं तथा राजस्थानी स्थापत्य-कला, चित्र-कला तथा मूर्ति-कला पर भी यदा-कदा लेख छपते रहे हैं । राजस्थान के देव-मन्दिरों, राज-प्रसादो मे, पुस्तकालयों मे तथा जैन पुस्तक-भण्डारो में राजस्थान की पुरातन सम्पदा आज भी बहुत कुछ सुरक्षित है, परन्तु कुछ समय से लुके-छिपे ये अमूल्य रत्न विदेशियो द्वारा देश से बाहर जाने लगे हैं । यदि इस सामग्री का यथासमय उपयोग न हो सका तो सदा के लिए हम इसे खो बैठेंगे ।

राजस्थान की वीर-गाथाओं का भण्डार भी वृहद् है । कर्नल टॉड ने कुछ संग्रह तीन भागों में प्रकाशित किये हैं । अन्य प्रकाशन भी कुछ हैं परन्तु अभी अनेक गाथाएं अप्रकाशित हैं । राजस्थान के अनेक ग्राम वीर-गाथाओ से ओत-प्रोत हैं । इनका संग्रह वयोवृद्ध ग्रामीणो, नागरिको, चारणो तथा कथावाचकों द्वारा न हो सका तो ये गाथाएं सदा के लिए लोप हो जाएंगी ।

मरु-भारती इस क्षति से देश को बचाने मे सहायक हो सकती है । स्थापत्य-कला, मूर्ति कला, चित्र-कला तथा वीर-गाथाओ के विशेषाङ्क निकालने का प्रयास होना चाहिए तथा अन्य अङ्कों में भी इन विशेष स्तम्भो मे लेखो का प्रकाशन किया जाना चाहिए ।

—श्री शुकदेव पाण्डे
नैनीताल, (उ० प्र०)

रसेन कथा

—श्री भँवरलाल नाहटा

मिलता, प्रस्तुत लेख में एक ऐसी ही कथा प्रकाशित की जा रही है जो जिनपूजा और दान का महान् और विशिष्ट फल बतलाने के लिए रची गई है। अन्य कथाओं में पूर्व जन्म का सम्बन्ध प्रायः पीछे जोड़ा जाता है पर इस कथा का वृत्तान्त पहले ही जोड़ दिया गया है। इसको अलग कर देने के बाद लोक-कथा का विशुद्ध रूप निखर आता है। अनेक कौतूहल-वर्द्धक और आश्चर्यजनक वस्तुओं और घटनाओं से यह कथा ओत-प्रोत है। कथानक रूढ़ियों का इतना बाहुल्य इसे लोक-कथा सिद्ध करता है।

कथानक-रूढ़ियाँ—

अमरसेन वयरसेन दो सगे भाई थे, अपनी सौतेली माता के दुष्प्रपंच से इन्हें निर्वासित होकर जंगलों में भटकना पड़ता है। सौभाग्य से वे राजा की आज्ञा मार डालने की होने पर भी चाण्डाल की सद्भावना से बच पाते हैं। जंगल में उन्हें शुक-शुकी के द्वारा अद्भुत महात्म्य—अमोघ आम्रफल मिलते हैं। वयरसेन को तो कुट्टिनी द्वारा दो बार ठगा गया पर वह आपत्ति भी उसके लिए सम्पत्ति का ही कारण बनी। देवाधिष्ठित या विद्याधरों के लगाए हुए आम्रफल कितना विचित्र प्रभाव दिखाते हैं। इसी प्रकार कथा के झटकाने पर पाँच सौ रत्नों का गिरना, पादुका धारण कर आकाश मार्ग से उड़ना, दंड का भी अमोघ प्रभाव बतलाना इत्यादि असंभव बातें लोक-कथा के लिए सहज संभव तत्त्व हैं। कथाओं को सुरुचिपूर्ण व कौतूहल-वर्द्धक बनाने के लिए ऐसी अनेक कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग लोक-कथाओं के लिए अनिवार्य है। फूल सूँघने से मनुष्य से गधा व गधी बन जाना दूसरे फूल को सूँघने से पुनः मानव देह प्राप्त हो जाना भी

कम कौतूहल-वर्द्धक नही हैं। राजा के मरने पर पच दिव्यो का प्रकट करना और नये राजा का चुनाव उसके द्वारा होने की बात अनेक कथाओं द्वारा समर्पित कथा-रूढि है। वेश्या व कुट्टिनी का प्रसग तो उनके स्वभाव-जन्य दोष के परिचायक हैं।

प्राचीनता—

यह कथा पर्याप्त प्राचीन प्रतीत होती है। प्राकृत, सस्कृत के कई ग्रथों मे इसका उपलब्ध होना परवर्ती रासो से सिद्ध है पर उनमें सबसे प्राचीन ग्रथ कौनसा है यह अभी तक निर्णयाधीन है। कवि जिनहर्ष ने अमरसेन वयरसेन रास के अन्त में इस रचना का आधार पार्श्वनाथ चरित्र बतलाया है। पर पार्श्वनाथ चरित्र कई हैं, उनमें से किस के द्वारा रचित कौन से पार्श्वनाथ चरित्र में यह कथा है, यह अन्वेषणीय है। कई अन्य जैन कवियो ने इस कथा सम्बन्धी अपनी रचना का आधार पुष्पमाला और प्रतिक्रमण सूत्रवृत्ति का उल्लेख किया है। पुष्पमाला प्रकरण मूल तो प्राकृत में है और तेरहवी शताब्दी की रचना है। मूल ग्रथ मे तो उनका नामोल्लेख जैसा ही होगा, पूरी कथा तो टीकाकारो ने दी है और टीकाएँ भी कई हैं। प्रतिक्रमण सूत्रवृत्ति भी कई विद्वानो द्वारा रचित मिलती है, उनमे से किसके रचित ग्रन्थ में यह टीका है अन्वेषणीय है। तेरहवी शताब्दी से पूर्व भी यह लोक-कथा के रूप मे प्रसिद्ध रही होगी, जिसका उपयोग जिन-पूजा और दान के माहात्म्य बतलाने के लिए जैन विद्वानो ने किया है। प्राकृत, सस्कृत रचनाओ को छोड भी दें पर केवल राजस्थान रास काव्य ही इस कथा के सम्बन्ध में १० जैन कवियो के रचित मिलते हैं, इससे इसकी लोकप्रियता स्वयसिद्ध है। सोलहवी शताब्दी से अठारहवी शताब्दी अर्थात् पौने दो सौ वर्षो में ही १० राजस्थानी काव्य इस कथा को लेकर बनाये गए जिनकी सूची नीचे दी जा रही है।

१—अमरसेन वयरसेन चौपाई गा० २६३ सं० १५६४ राजशील।
२—अमरसेन वयरसेन रास सं० १६४० कमल हर्ष।
३—अमरसेन वयरसेन प्रबध स० १६४४ सग्रामपुर, रगकुशल।
४—अमरसेन वयरसेन आख्यान गा० ५११ स० १६७६ सघ विजय।
५—अमरसेन वयरसेन चौ० सं० १७०० जेसलमेर, जयरग।
६—अमरसेन वयरसेन चौ० स० १७०६ सीतपुर, दयासार।
७—अमरसेन वयरसेन रास स० १७२४ सरसा, धर्मवर्द्धन।
८—अमरसेन वयरसेन रास स० १७४४ अहमदनगर, तेजपाल।
९—अमरसेन वयरसेन रास सं० १७४४ पाटण, गा० ४६३, जिनहर्ष।
१०—अमरसेन वयरसेन रास स० १७६८, जीवनागर।

इनमे से कवि जिनहर्ष रचित रास २६ ढालो मे है। इसी का सारांश आगे दिया जा रहा है। अन्य कुछ रास तीन या चार खडो मे विभक्त हैं।

[illegible] भाषा—

[illegible] शताब्दी के प्रारम्भ से [illegible] [illegible] के [illegible] कलारबोध मे [illegible] लिखी है। तीन सौ वर्ष [illegible] उदाहरण [illegible] के बाद यह प्राचीन गद्य [illegible]। [illegible] के और भी बहुत से [illegible]—[illegible] भाषा टीकाओं मे गद्य [illegible]। राजस्थानी भाषा के भाषावैज्ञा- [illegible] बहुत उपयोगी प्रमाणित हो [illegible]।

[illegible]—

[illegible] देशियों की उल्लेखनीय विशेषता यह भी रही [illegible] जिस प्रकार लोक-कथाओं को विशेष रूप [illegible] लोक-प्रसिद्ध देशियों अर्थात् [illegible] की रचनाएँ की। कवि जिनहर्ष [illegible] सर्वाधिक चरित्र काव्य- [illegible]। उन प्रचुर देशियों का उपयोग एवं [illegible] रचनाओं मे प्रयुक्त देशियों [illegible] अनेक विपुल एवं प्राचीन [illegible] जानकारी मिल सकेगी। अद्यावधि [illegible] प्रति आधारभूत [illegible] प्राप्त करके उनका [illegible] कवि जिनहर्ष ने [illegible] सं० १७०४ से १७६३ तक मे [illegible] और [illegible] स्तवन, गीत, [illegible] के संग्रह मे हमारे द्वारा प्रका- [illegible] है। [illegible] रचनाओं [illegible] प्रो० [illegible] [illegible] है। [illegible] कवि के [illegible] और प्रायः स्वयं [illegible] भाई भंडार मे

थी वह भंडार अस्त-व्यस्त हो गया और वे प्रतियाँ अब कहाँ है ? पता लगाना कठिन हो गया।

रास में प्रयुक्त देशियों की सूची

कवि जिनहर्ष ने अपनी कृतियों में विविध राग-रागिनी व लोक-गीत आदि की ढालो का प्रयोग प्रचुरता से किया है। प्रस्तुत रास में छब्बीस ढालें हैं इन मे दोहा छंद के अतिरिक्त जिन देशियो का प्रयोग किया है, उनकी सूची इस प्रकार है—

१-चउपईनी, २—अलबेलानी, ३—धन २ सप्रति माचउ राजा, ४-कपूर हुवइ अति ऊजलउरे, ५ ईडर आंबा आंबिली रे, ६ धन धन श्री रिषिराज अनाथी ७ घउलइ भार मरा छा राज, थे तउ बात करउ छउ ८—कोइलउ परवत धुंधल उ रे लो, ९—महर दिल्ली का बाग मइ, दोइ नारिंग पक्कीयाँ हे लो १०—माता दरजग्ग री, ११-राजा रायसध ना सोहलानी, १२-चतुर सनेही मोहना, १३—म्हारा आतमराम किणि दिन मेवुं जि जासुं (राग-परजीयउ), १४—ढाल-रमीयानी, १५-रातडीया रमीनइ रे किहाँ थी आवीया रे १६ जाटणी ना गीत नी, १७—आज आंगणइइ पिउ रमीयउ, १८-नणदल विंदली ल्यउ, १९-गलीया-रउ साजण मिल्या घणा वारी, २०-धणरी सोरठी, २१—मोहन मुंदरी ले गयउ, २२-नइणाँ मेलउ दे रे २३—राजा जउ मिलइ, २४-हुरीया मन लागउ, २५—जीहो विथिला नयरी नउ धणी, [illegible]६-मोरी बहिनी यहि काइ अभरिज बात।

पद्य संख्या—

प्रत्येक ढाल के प्रारंभ मे दोहे हैं, दोहा व ढालो की संख्या क्रमिक चली आती है जो ४६३ है। कवि ने "च्यारिसउ त्रेसठि एहनी गाथा ढाल छवीस" अंत में लिख कर रास की छंद-संख्या बतला दी है।

वर्णन —

कहावत प्रसिद्ध है कि 'सौत तो मट्टी की बुरी" कवि ने इस प्रकार लिखा है—

'मीण तणी जउ सउकि करीनइ वार ऊपरि लेइ बांधइ रे।
ढोंपइ करि नइ वस्त्र विगाडइ, वयर इसी परि साधइ रे ॥६७॥
मुइ तउ पणि हियड़इ वइसइ, दोष करइ दुख आपइ रे।
तउ जीवती किम दुख नापइ, कंत तणउ चित्त कापइरे ॥६८॥'

वेश्या का स्वार्थी पना —

छेह दिखावइ प्रीति न लावइ, वित्तइ चित्त लगावइ
वेशा तइ दुरजन सारीखा, स्वारथ अधिक सुहावइ ॥२२५॥

अब कवि द्वारा वन-वर्णन, षड् ऋतु वर्णन और प्रसगवश स्मशान भूमिका जो चित्रण किया गया है, उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है—

चलता महावन मां पड्या रे लो, वृक्ष तणा जिहाँ वृंद रे भा०
अधारउ व्यापी रह्यउ रे लो, दीसइ नही रवि चदो रे भा० ॥३२॥ जो०
ताल हताल एकइ दिसइ रे लो, अर्जुन साल प्रियाल रे ॥भा०॥
नाग प्रियाग लविंग नारिंग ना रे लो, चदन अगर तमाल रे॥भा०॥३३॥
एक दिसइ आवा फल्या रेलो, दाडिम द्राख असोक रे ॥भा०॥
पाडल चंपक फूलिया रे लो, जोता जायइ लोक रे ॥भा०॥३४॥
किहाँ पिचुमद हरीतकी रे लो, वड पीपल मंदार रे ॥भा०॥
सरल सफल मदनासना रे लो, धव तरुअर कचनार रे ॥भा०॥३४॥

लोकोक्तियाँ—

जिनहर्ष महाकवि थे, इन्होंने अपनी कृतियो में लोकोक्ति और मुहावरो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग किया है। प्रस्तुत अमरसेन वयरसेन रास मे भी कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

"नीचोवइ धोवइ किसुं नागी जे पणिहार ॥५८॥"

[नागी कइ धोवै'र कांइ निचोवै ? राजस्थानी कहावत

'जीवंता कल्याण छइ, वली भोगव स्यइराज"

[जीवन्नरो भद्रशतानि पश्यति]

[illegible] स्यु रोग ॥२४॥

[illegible] रे, [illegible] मइ धूज ॥६४॥

[illegible], [illegible] घरी बहि पाणी"

[[illegible] पाती, [illegible] ।

[illegible], जिम भोजन [illegible] लूण ॥२८८॥

[[illegible] राज० क०]

[illegible], [illegible] हीरा

[illegible] रे, [illegible] हीरा ॥३६२॥"

[illegible] ॥२२१॥"

[illegible], [illegible] नितो नित ।

[illegible] रे, [illegible] ॥१६५॥

षट् ऋतु-उद्यान वर्णन—

[illegible] हो, [illegible] सहकार ।

[illegible] हो जी, पचम राग विस्तार ॥४८॥

[illegible] रे, [illegible] फूल सुगध ।

[illegible] हो जी, न करइ भमर सबध ॥४६॥

[illegible] रे, पाडल बकुल सोहत ।

[illegible] हो जी, नर नारी झीलत ॥५०॥

[illegible] रे, [illegible] मल्हार ।

[illegible] हो जी विकसि रही तिणि वार ॥५१॥

[illegible] रे, स्वच्छ सरोवर नीर ।

[illegible] हो जी, मिलि कर खजन खीर ॥५२॥

[illegible] पत्र ।

[illegible] हो जी, कुद मचकु दादिक पत्र ॥५३॥

[illegible] रे, फूल सेवत्री सार ।

[illegible] हो जी, भमर करइ गुंजार ॥५४॥

श्मशान वर्णन—

[illegible], जिहा भयकारी मसमाण रे ॥पु०॥

[illegible], [illegible] प्राण रे ॥पु०॥३६॥

[illegible], [illegible] अपार रे ॥पु०॥

[illegible], [illegible] मोटा आकार रे ॥३७॥

[illegible], [illegible] फिरइ अनेक रे ॥पु०॥

[illegible], [illegible] न रहइ विवेक रे ।पु०॥३८॥

[illegible], [illegible] रे ।

[illegible], [illegible] ॥पु०॥३६॥

अनेक जैन कवियो की भाँति कविवर जिनहर्ष ने भी सरल भाषा मे और सहज गति से चरित नायकों की कथा को गतिशील बनाया है। जैन कवियों का उद्देश्य विद्वत्ता प्रदर्शन न होकर कथाओं के माध्यम से मानव जीवन को उन्नत बनाने का ही प्रधान रूप से रहा है। इसलिए अनावश्यक विस्तार और छन्दालंकारों की छटा उनमें विशेष नहीं पाई जाती पर जनता के लिए उनकी रचनाएँ पर्याप्त लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। उनकी रचनाओं से हजारों लाखों व्यक्तियों ने सत्प्रेरणा पा कर अपने जीवन को आदर्श एवं उन्नत बनाया है। अन्त में कवि ने जो प्रशस्ति दी है उसमे इस रचना का आधार, रचना संवत्, स्थान अपने गच्छ एवं गुरु का परिचय तथा पद्य-संख्या की आवश्यक जानकारी दे दी है। कवि की प्रयुक्त देशियों मे कई तो जैन कवियों के प्रसिद्ध ढालों की हैं पर जो लोक-गीतों की देशियाँ हैं, उनकी ओर पाठकों का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया जाता है। 'माना दरजण' और राजा रायसिंह के सोहले का कौनसा लोक-गीत था, इसकी खोज की जानी चाहिए।

रास-सार

भरत क्षेत्र में रिषभ नगर नामक एक समृद्ध नगर था जहाँ कुश नामक राजा के राज्य में अभयंकर सेठ निवास करता था। यह सेठ बड़ा ही धर्मात्मा, विवेकी और दानी था। पुण्योदय से उसके सेठानी कुमलवती भी सद्गुणी और शीलवती थी। इस सेठ के यहाँ दो नौकर रहते थे जो बहुत ही सरल स्वभावी और भले थे। एक तो घर का सारा काम करता और दूसरा गोधन चराता था। एक दिन रात्रि के समय वे दोनों परस्पर बातें करने लगे कि अपने सेठ-स्वामी जितने धर्मात्मा हैं, इन्होंने पूर्व जन्म मे सुकृत किया है जिससे यहाँ सुख है और परभव के लिए भी सबल अर्जित कर रहे हैं। अपन तो पुण्यहीन हैं, व्यर्थ ही थोहर वृक्ष की भाँति मानव-भव निष्फल खो रहे हैं। इन उभय भृत्यों की वार्त्तालाप सेठ के कर्णगोचर हुआ तो वह इनकी भावना और परिणति से आह्लादित हो कर सोचने लगा कि ये दोनो सरल और धर्म प्राप्ति के योग्य पात्र है। सेठ के मन में नौकरों के प्रति इस वार्तालाप से प्रेम और सहानुभूति बढ गई।

एक दिन चौमासी पर्व के अवसर पर सेठ ने इन्हें पुष्प देते हुए जिन-पूजा के लिए प्रेरित किया। भृत्य ने कहा—जिनके पुष्प हैं, उन्हे ही इसका फल होगा। सेठ के आग्रह पर भी जब उन्होंने पुष्प नहीं लिए तो सेठ इन्हें गुरु महाराज के पास लाया। गुरु महाराज ने उपदेश दिया कि जिनेश्वर की अष्ट प्रकारी पूजा मोक्ष-सुखदायी है। भावपूर्वक यदि एक भी पुष्प प्रभु के चरणों में चढाया जाय तो वह प्रभु के समकक्ष हो सकती है, प्रभु की यही तो बड़ाई है। गोपाल ने कहा—मेरे पास बीस कौडी हैं। गुरु महाराज ने कहा—इसी द्रव्य के द्वारा पुष्प पूजा कर तुम अनंत-गुणा लाभ प्राप्त कर सकते हो। उन्होंने एक दृष्टान्त दिया—एक नगर में एक बुढिया रहती थी जिस का नाम दुर्गति था। एक बार वह वन में काष्ठ की भारी लाने के लिए गई और वहाँ ज्ञानी मुनिराज का प्रवचन सुनने बैठ गई। मुनिराज ने कहा—उत्कट भावों से जिनेश्वर की पुष्पादि से पूजा करने वाले को मुक्ति भी सहज उपलब्धि होती है। बुढिया ने लकड़ी की भारी ले जाते हुए सिन्दुवार के फूल चुनकर जिन-पूजार्थ एकत्र कर लिये। वह रास्ते चलते हुए विचारने लगी—मैं हीनपुण्या हूँ, पूर्व भव मे जिनेश्वर की पूजा नहीं की अतः यह विपन्नावस्था भोगनी पड़ती है। मैंने सारा जीवन व्यर्थ गँवाया, जननी को दस मास भारों मारा और अब पृथ्वी को भारभूत किया। अब यह भारी बेचूंगी पीछे और पहले जिनालय जाकर प्रभु पूजा के द्वारा अपना जीवन सफल करूँगी। इस प्रकार भावना भाती हुई भूखी-प्यासी थकी-माँदी होने पर

[illegible]

[illegible]

कलिंग देश का राजा सूरसेन अपने प्रबल भ्राताओं द्वारा राज्यच्युत होकर कुरुदेश में आया और गजपुर नरेश की सेवा में उपस्थित हुआ। राजा ने उसे चार समृद्ध गाँव प्रदान किए जिस से वह अपनी शील-गुण सम्पन्न विजया नामक प्रिया के साथ सुकरा गाँव में आनन्द पूर्वक रहने लगा। अभयंकर सेठ के दोनों भृत्य पहले साधु दान दाता और फिर जिन पूजक क्रमशः मर के विजया रानी की कुक्षि से उत्पन्न हुए। राजा ने उनका नाम अमरसेन और वयरसेन रखा। द्वितीया के चन्द्र की भाँति बढते हुए दोनों कुमार क्रमशः तरुणावस्था को प्राप्त हुए। राजा ने उन्हें कलाभ्यास करा के सुयोग्य बनाया। वे पूर्व जन्म के पुण्य-प्राग्भार से सर्वप्रिय बन गए पर उनकी सौतेली माता जया उन्हें देख कर मन ही मन प्रतिक्षण जलती रहती थी। सौत को शूली जैसी कहा है, वह तो मोम की भी बुरी होती है और सौतिया डाह प्रसिद्ध ही है। एक दिन राजा कहीं बाहर गया हुआ था। जया ने अपना मतलब गाँठने की ठानी, वह कोपगृह में जाकर टूटी खाट पर पड़ गई। राजा ने आकर जब जया को न देखा तो उसे पुकारते हुए कोप-गृह में जाकर देखा। वह उग्र क्रोध में भरी बैठी थी, अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहने लगी कि— आप तो ग्रामान्तर चले गए और पीछे से तुम्हारे उच्छृंखल हाल से पुत्रों ने मेरे महल में आकर मुझे बहुत तंग किया। वे तो यौवनमद में अंधे हैं, उन्होंने मुझ से भोग की प्रार्थना की। मैंने बलपूर्वक अपने शील की रक्षा की और पतिव्रत धर्म का पालन किया। मैं आपके कुलांगारों के सम्बन्ध में अधिक क्या कहूँ? यदि कुछ कहूँगी तो आप कहेंगे कि सौत के पुत्रों पर द्वेष रखती हो।

रानी की झूठी शिकायतें सुन कर राजा अपने पुत्रों पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। उसने तत्काल चाण्डाल को बुला कर आदेश दिया— दोनों कुमार अश्वारूढ होकर घूमने गए हैं, तुम तुरंत उनका मस्तक काट कर

लाओ और मुझे दिखाओ। इसमें अन्यथा न हो। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारा सिर धड से अलग कर दिया जायगा। चण्ड चाण्डाल ने ज्यो ही राजाज्ञा सुनी, वह अवाक् रह गया। वह सोचने लगा—राजा अपने प्राणप्रिय, कुलदीपक गुणवान् पुत्रो को क्यों मरवा रहा है? वह तुरत कुमारो के पास जगल में जा कर मिला और राजाज्ञा सुनाई। कुमारो ने कहा—तुम प्रसन्नतापूर्वक पिताजी की आज्ञा का पालन करो। चण्ड ने कहा—आप लोगो को देख कर मेरा हृदय आल्हादित होता है। संभवत: किसी दुर्जन के द्वारा कान भरे जाने पर राजा ने अविचारपूर्ण आज्ञा दी है पर मेरे से यह दुष्कृत्य नही होगा। मैं किसी भी प्रकार प्रपच करके अपने प्राण बचा लूंगा, आप दोनो यहां से विदेश चले जाइये। जीवित रहने मे ही कल्याण है।

अमरसेन वयरसेन अपने घोडे चण्ड को सौंप कर पैदल ही वन के मार्ग में चल पडे। चण्ड ने चतुर कालाकार से दो मिट्टी के मस्तक बनवा कर उन पर ऐसा रग करवाया कि देखने मे ठीक कुमारो जैसे ही लगे। उसने राजा को दूर से मस्तक दिखा कर घोडे सौप दिये। राजा ने क्रोध पूर्वक कहा—इन्हे ले जाकर कहीं गाड दो। चण्ड अपनी चतुराई मे सफल हो गया।

अब अमरसेन, वयरसेन जिस घनघोर वन मे चल रहे थे, सूर्य का प्रकाश भी मुश्किल से पहुँचता था। ताल, तमाल, अर्जुन, हताल, साल, नाग, प्रियगु, लवग, अगर, चदनादि के वृक्षो से सुशोभित वन में कही आम्र, दाडिम, द्राक्षा, अशोक, वड, पीपल के वृक्ष थे तो कही पाडल, चपक पिचुमंद, मदार, कचनार आदि के वृक्ष फले-फूले थे। दोनों भ्राता एक आम्र वृक्ष के नीचे जाकर बैठे। उन्होंने फलाहार करके नदी के जल से प्यास बुझाई और सूर्यास्त होने पर वही वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। वयरसेन ने पूछा कि—अपना कोई अपराध नहीं, फिर पिताजी के रुष्ट होने का क्या कारण है? अमरसेन ने कहा—ठीक तो नही जानता पर विमाता ने ही झूठे कान भरे होंगे। वयरसेन ने कहा—पिता जी ने सत्य मान लिया? अमरसेन ने कहा—त्रिया चरित्र के आगे असभव भी सभव हो जाता है, खैर हमें तो उपकार ही मानना चाहिए कि देशाटन, विविध दर्शन और स्वावलंबन का अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार बात करते-करते अमरसेन को नींद आ गई तो वयरसेन सावधान हो कर सुरक्षा के लिए प्रहरी की भांति बैठ गया।

जिस आम्र वृक्ष के नीचे दोनो भाई अवस्थित थे उसी वृक्ष पर शुक पक्षी का एक जोडा रहता था। शुक ने शुकी से कहा—आज अपने यहाँ कोई विपत्ति मे पडे हुए उत्तम पुरुष आये हुए मालूम देते हैं, हमें धिक्कार है कि इनका कोई उपकार नही कर सकते, क्योकि स्वय अकिंचन पक्षी हैं। शुकी ने कहा—प्राणेश्वर! आप ऐसा क्यो कहते हो। मुकुट पर्वत के नीचे वाले वन मे विद्याधर के लगाये हुए जो दो आम्र वृक्ष हैं उन पर लगे फलो का प्रभाव अपन सुन चुके हैं कि एक को भक्षण करने वाला सातवें दिन राजा होता है और दूसरे को भक्षण करने वाले के मुँह से प्रति दिन पांच सौ स्वर्ण-मुद्राएँ गिरती हैं। अत. आप एक-एक फल इन्हे ला दीजिये। शुक ने शुकी की उपकार बुद्धि की प्रशसा की, फिर दोनो तत्काल वृक्ष से उड चले और थोडी देर मे दो फल लाकर वयरसेन के सम्मुख रख दिये। इनमे बडा फल राज्य-दाता और लघु द्रव्य-दाता था, उसने यत्न पूर्वक अपनी कमर में बांध लिए। अमरसेन के उठने पर वयरसेन सो गया। सूर्योदय होते ही दोनो भाई उठ कर आगे चल पडे और एक सरोवर के आने पर शौचादि से निवृत्त हुए। वयरसेन ने अपनी कमर मे बँधे हुए फलो को निकाल कर बडा फल अमरसेन को दिया और छोटा फल स्वय उदरस्थ कर गया। उसने प्रतीति करने के लिए गुप्त स्थान मे जाकर खखारा किया तो मुख से पांच सौ स्वर्ण-मुद्राएँ आ गिरी।

[illegible] नगर में जाकर [illegible] पाया, उन [illegible] करने लगे । एक [illegible]—तुम [illegible] धन [illegible] मेरे पास धरोहर [illegible] । दोनों भाइयों की [illegible] दिन रत्नपुर नगर के निकट [illegible] विश्राम करने और [illegible] के लिए [illegible] नगर में चला [illegible] । उसी नगर का [illegible] था, अतः मंत्रियों ने उत्त- [illegible] के लिए प्राचीन प्रथानुसार [illegible]—हाथी, घोड़ा, छत्र-चमर और कलश प्रगट [illegible] बाहर आये तो [illegible] के निकट आकर उसे [illegible] किया । [illegible] अमरसेन का जय-जयकार [illegible] पर नगर में [illegible] हुआ और न्याय पूर्वक [illegible] ।

[illegible] के प्रभाव से अमरसेन के राज्य-प्राप्ति [illegible] भी वयरसेन ने भाई के समक्ष [illegible] नहीं किया, क्योंकि उसके [illegible] प्रचुर धन का साधन [illegible] के मद में भाई के पास न जाकर [illegible] के घर में रहने लगा । मातापिता [illegible] और [illegible] थी, अत. वह [illegible] हो गया ।

[illegible] भाई की खोज के लिए बहुत [illegible] किया पर कितने ही दिनों [illegible] । [illegible] वयरसेन को जानबूझ [illegible] था । उसे प्रतिदिन की [illegible] वेश्या को भी प्रचुर धन [illegible] करता था । [illegible] कहा—[illegible] बिना किसी व्यापार-आजीविका के इतना धन कहाँ से लाता है ? उसने कहा—हमारा तो घर भर रहा है हमें क्या प्रयोजन है पूछने का ? फिर भी कुट्टिनी के आग्रह से एक दिन वह वयरसेन से पूछ बैठी और मुग्ध वयरसेन ने अपने उदरस्थ आम्र की सच्ची-सच्ची बात बता दी । कुट्टिनी ने आम्रफल प्राप्त करने के लिए एक दिन उसे विशेष मदिरा पिला कर वमन करवाया । उसने आम्र को प्रक्षालन कर स्वयं भक्षण किया, पर वह निष्फल हो गया । आम्रफल का प्रभाव टूट गया और वयरसेन के निर्धन होने पर कुट्टिनी ने उसे अपमानित कर घर से निकाल दिया ।

स्थानभ्रष्ट वयरसेन इधर-उधर भटकता हुआ नगर के बाहर जा बैठा । जब वह लौटने लगा तो रात्रि में प्रतोली द्वार बंद हो चुके थे, अतः स्मशान भूमि स्थित किसी शून्य देवकुल में निवास करने लगा । उस भयंकर स्मशान में रात्रि में चार चोर आए और उत्तम वस्तुओं के बँटवारे के लिए परस्पर विवाद करने लगे । वयरसेन ने चोर संज्ञा में उन्हें पुकारा, अतः उन्होंने उसे चोर समझ कर अपने पास बुला लिया । झगड़े का कारण पूछने पर चोरों ने कहा—मित्र ! हमारे पास डंडा, कंथा और चाखडी. तीन वस्तुएं हैं, और हम चार साझी हैं । अतः बँटवारे का ही झगड़ा है । वयरसेन ने कहा—सामान्य वस्तुओं के लिए क्यों लड़ते हो ? उन्होंने कहा—तुम भोले हो, इनका माहात्म्य नहीं जानते । फिर उसके वितरण करने पर चोरों ने कहा—स्मशान में एक सिद्ध पुरुष रहता था, जिसकी किसी व्यक्ति ने छः मास पर्यन्त सेवा करके एक महा विद्या प्राप्त की, जब शिष्ट तीन वस्तुएँ भी शेष में तुम्हें ही दूँगा, ऐसा आश्वासन दिया । हमने छः महीने तक घात लगाए रखा, अन्त में उस सिद्ध को मारकर ये वस्तुएँ प्राप्त की हैं । अतः कथा को संभेरने पर पाँचसौ रत्न गिरते हैं, दण्ड के प्रभाव से शस्त्र का आघात नहीं लगता और चाखडी को पहन कर अभीष्ट स्थान में आकाश मार्ग से गमन हो सकता

है। वयरसेन ने कहा—मैं बिना किसी विवाद के सहज बँटवारा कर देता हूँ। उसने तीनो वस्तु अपने पास रखकर कहा—मैं चारो दिशाओ मे तीर फेंकता हूं, जो पहले तीर लेकर आयेगा, उसे मैं वस्तु दूंगा। तीर लेने के लिए चले, दिशाओ में दौडे। वयरसेन के पास तीनों वस्तुएँ थी ही, वह पैरो में चाखडी पहन कर उड गया, चोर लोग हाथ मलते रह गए। तीन के बिगाड़ में चोथे का लाभ।

वयरसेन ने नगर में जाकर अपने विश्वस्त मित्र के पास तीनो वस्तुएँ रखदी और सुख से रहने लगा। अब उसके पास धन की कोई कमी नहीं थी, बडे ठाठ से मौज करने लगा। वेश्या की दासी ने उसे वयरसेन के समृद्ध होने की खबर दी तो फिर वेश्या ने उसे प्राप्त करने के लिए डोरे डालने प्रारभ किये। उसने वियोगिनी, कृशागी, श्वेतवसना का रूप देकर मागधिका को आगे किया और नाना प्रकार के फरेब, उपालंभ आदि देते हुए चाटुकारितापूवक वयरसेन को पुन: अपने घर में आने को विवश कर दिया। वयरसेन उसका अन्त कपट जानता था कि वह मेरा धन लूटने के लिए ही मुझे घर ले जा रही है, पर उससे बदला लेने के उद्देश्य से वह उसके यहाँ चला गया और आनन्दपूर्वक रहने लगा।

कुछ दिन बाद कुट्टिनी ने मागधिका से कहा—जब वह तुम्हारे प्रेम में अभिभूत हो, तब उससे धनागम का रहस्य पूछना। मागधिका ने कहा—अनर्गल धन तुम्हें मिलता है, फिर भी सन्तोष नही, मैं तो अब नहीं पूछूंगी, तुम स्वयं पूछ लो। कुट्टिनी ने एक दिन उसके निकट आकर चिकनी-चुपडी बातें करते हुए द्रव्य-प्राप्ति का कारण पूछा तो वयरसेन ने कहा—माता जी! मेरे पास देवाधिष्ठित चाखडी है जिसे पहन कर जहाँ कहीं से इच्छित धन ले आता हूँ। कुट्टिनी ने चाखड़ी प्राप्त करने के लिए वेदनाग्रस्त रोगिणी होने का कपट प्रपच रचा और चीत्कार करने लगी। वयरसेन के पूछने पर उसने कहा—जब तुम चले गये तब हमने अत्यन्त मानसिक कष्ट अनुभव किया और तुम्हे पुनः प्राप्त करने के लिए समुद्र मध्य स्थित कामदेव के मन्दिर की यात्रा बोली थी, अब तुम्हारे आ जाने पर भी सुदूर दुर्गम यात्रा न कर सकने के कारण पीडा पा रही हूँ। वयरसेन ने मन में सोचा—रंडी को समुद्र के बीच छोडकर बदला लेने का अच्छा अवसर है, उसने प्रकट रूप से कहा—यह कोई कठिन कार्य नही। मैं तुम्हें यात्रा करा दूंगा। कुट्टिना ने उसका आभार मानते हुए बडी प्रशसा की।

वयरसेन बुढिया को कधे पर बैठाकर चाखडी पहन कर गगन मार्ग से समुद्र पार कामदेव की यात्रार्थ ले गया। उसने बुढिया से देवगृह में जाकर यात्रा कर आने को कहा तो कुट्टिनी ने कहा—पुरुष प्रधान होते हैं अतः उन्हे ही पहले यात्रा करनी चाहिए। वयरसेन उसकी बात में आगया और चाखडी बाहर छोडकर विशाल देवालय के प्रांगण मे प्रविष्ट हो गया। वेश्या ने तत्काल चाखडी पहनी, और उड़कर अपने घर आगई। वयरसेन ने बाहर आते ही वेश्या को न देखकर समझ लिया कि रंडी को धोखा देकर मैंने मन ही मन उसे समुद्र में गिरा देना चाहा था, पर मुझे ही बुरे विचार के फलस्वरूप विपत्ति में पडना पडा।

वयरसेन जब वहाँ चिन्ताग्रस्त बैठा था तो एक विद्याधर ने आकाश मार्ग से आकर करुणापूर्वक उसकी चिन्ता का कारण पूछ कर हाल ज्ञात किया उसने कहा—तुम धैर्य रखो, मैं अभी तो कार्यवश कही जा रहा हूँ, पन्द्रह दिन बाद आकर तुम्हे तुम्हारे स्थान पर पहुँचा दूंगा। तब तक तुम यही कामदेव की पूजा करते आनन्द से रहो। मन्दिर के पृष्ठ भाग मे सर्वर्तुक उद्यान है, वहाँ क्रीडा करना, पर चैत्यालय के आगे वाले वृक्षों के पास कभी मत जाना। विद्याधर उसे भोजन के लिए मोदक भी दे गया। वयरसेन विद्याधर की सीख के अनुसार आनन्दपूर्वक रहने लगा।

[illegible] गया, उसके [illegible] [illegible] का इस- [illegible] गया। [illegible] पास [illegible] [illegible] जिससे [illegible] इधर [illegible] के अतिरिक्त [illegible]। विद्याधर ने [illegible] उसे [illegible] पुष्प को सुंघाकर उसे [illegible] कर दिया। विद्याधर वज्रसेन को [illegible] गया। [illegible] को गृहीत कर [illegible] और विद्याधर ने पाँचवें दिन [illegible] पहुँचा दिया।

[illegible] देख कर अक्का [illegible] बोली—यह आया कैसे और [illegible]। उसने वज्रसेन को पुनः अपने [illegible] लगा कर यहाँ [illegible]। वह [illegible] आई। कुमार ने अपनी मानसिक [illegible] कहा—माताजी, [illegible] कहा—बेटा! तुम सहित [illegible] विद्याधर आ कर तुम्हारी [illegible] भी उससे [illegible] दिया जिससे मेरे [illegible] हमारे [illegible] अपने [illegible] यहाँ [illegible] में [illegible] पहुँचा दिया। [illegible] आश्चर्यजनक [illegible] मुझे [illegible]

लोक में भी नहीं मिलती। उसने चापलूसी करते हुए कुमार से औषधि का रहस्य पूछा। कुमार ने कहा—इसे सूंघने पर वृद्ध भी तरुण हो जाता है। अक्का यद्यपि वृद्धा हो चुकी थी पर उसकी वासनाएँ जीवित थी, अतः वह षोडशी बनने का लोभ संवरण न कर सकी और कुमार से अपने पर औषधि प्रयोग करने की कृपा करने की याचना करने लगी। कुमार ने उसे आश्वस्त कर कषा व दण्ड ले लिया और उसे वह कुसुम सुंघाया जिससे वह तत्काल रासभी हो गई। कुमार उस पर कषा डाल कर सवार हो गया और दण्ड प्रहार द्वारा उसका कचूमर निकालने लगा। मागधिका अपनी अक्का के लोभ के प्रति फल प्राप्ति से मन ही मन सन्तुष्ट हो रही थी। मुहल्ले की वेश्याओं ने एकत्र हो कर राजा के सामने पुकार की कि किसी धूर्त व्यक्ति ने आकर औषधि प्रयोग से हमारी कुल वृद्धा को रासभी बना दिया है। राजा ने क्रुद्ध हो कर तला रक्षक को भेजा। उसके शस्त्रास्त्रों को कुमार दण्ड के द्वारा निष्फल करने लगा, राजा ने सुभट सैनिकों को भेजा, कुमार ने सभी के चौतरफे शस्त्रास्त्रों को फिर निष्फल कर दिया। तब राजा स्वयं गजारूढ हो कर देखने के लिए आया, वह राजा को देख कर रासभी को विशेष रूप से दण्ड प्रहार करने लगा। लोगों ने दोनों भ्राताओं को देखा, एक हाथी पर और दूसरा रासभी आरूढ था तो आकृति साम्य से वे विस्मित हो गए। राजा ने ज्यों ही भाई को देखा तो वह तुरंत हाथी से उतर कर उससे गले मिला। वज्रसेन ने राजा के पूछने पर रासभी रूपी कुट्टिनी को निर्मम पीटने का सारा रहस्य बतला दिया। उसे भरे बजार में बाँध कर निर्भर्त्सित किया गया। दोनों भाई गजारूढ होकर सैन्य सहित नगर में प्रविष्ट हुए। कुट्टिनी ने सारे नगर में बड़ी निन्दा पाई। लोग कहने लगे—

'अति लोभो न कर्त्तव्यो, लोभं नैव परित्यजेत्।
अतिलोभाभिभूतात्मा, कुट्टिनी रासभी भवेत्॥"

राज-भवन में जाने के बाद राजा अमरसेन के कहने पर कुमार वयरसेन ने दूसरा पुष्प सुंघा कर कुट्टिनी को रासभी से पुनः मानवी बना दिया। वयरसेन को चाखडी वापस मिल गई, वेश्या की बडी फजीहत हुई। राजा अमरसेन ने वयरसेन को युवराज पद दिया। फिर माता पिता को बुलाकर अमरसेन ने कहा—आप राज-सुख भोगें हम तो आपके आज्ञाकारी किंकर की तरह काम करेंगे। सौतेली माँ जया को भी उन्होंने आदर पूर्वक कहा—माताजी, आपकी कृपा मे ही हमें इतना बडा राज्य मिला है। पुत्रो के विनय और गुणग्राहकता से उसकी सारी ईर्ष्या समाप्त हो गई और पश्चात्ताप से सारा कलमष दूर हो गया। प्राण बचाने वाले चाडाल को उसकी जाति में प्रधान बना कर सत्कृत किया।

एक बार दोनों भ्राता गवाक्ष में बैठे हुए थे तो उन्होंने भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए मुनिराज को देखा। उन्होंने सदाचार-मूर्ति मुनिराज को देख कर कहा—कहीं ऐसे महापुरुष को देखा स्मरण होता है। ऊहा-पोह करते हुए दोनो भ्राताओ को अवधि अतिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। वे दोनो मुनिराज के पास वन्दनार्थ गए। उपदेश श्रवणानन्तर अमरसेन वयरसेन ने पूछा कि आपको देख कर हमारा चित्त बडा आल्हादित होता है इसका क्या कारण है? मुनिराज ने अवधि ज्ञान का उपयोग दे कर कहा—पूर्व भव मे तुम दोनों ने २५ कौडी के पुष्पो से जिन-पूजा व मुनिराज को दान दे कर। महान् शुभ फलदायक वृक्ष आरोपित किया है। उसी के फलस्वरूप इस भव में लब्धि सिद्धि और सपदा प्राप्त हुई है। पूर्व जन्म में मुनियो के प्रति भक्तिभाव रखने के कारण हमे देख कर प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं। अमरसेन-वयरसेन ने पूछा—हमे कब मोक्ष प्राप्त होगा? मुनिराज ने कहा—तुम लोग पूर्व पुण्यो को भोग कर पाँच भव के बाद महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न हो कर मोक्ष पाओगे।

मुनिराज की देशना से बहुत से जीवो ने प्रतिबोध पाया। अमरसेन वयरसेन भी विशेष रूप से धार्मिक प्रवृत्ति करने लगे। उन्होंने—जिन-मदिर-निर्माण, तीर्थयात्रा, जिन पूजा, स्वधर्मी और साधु-भक्ति आदि सत्कार्यों मे प्रचुर द्रव्य व्यय करने के साथ-साथ दीन-दुखियो के लिए दानशालाएँ खोली। चिरकाल पर्यन्त श्रावक धर्म पालन कर मुनि दीक्षा ग्रहण की और नाना परीषह सहते हुए विशुद्ध चारित्र पालन कर आयुष्य पूर्ण होने पर ब्रह्मदेव लोक में उत्पन्न हुए फिर उपरि लिखित (५ भव) अवधि के पश्चात् महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष गए।

रास के अंत मे प्रशस्ति में कवि ने लिखा है कि—

> युग वेद मुनि सिसि वच्छरइ, सुदि बीज फागुण मास।
> बुधवार पाटण नयर मइ, एह रच्यउ मइ रास ॥४६१॥
> श्रीखरतर गच्छ पति जयउ, जिनचंद सूरि सूरीस।
> गणि शाति हर्ष वाचक तणउ, कहइ जिनहर्ष मुनीस ॥४६२॥
> श्री पार्श्वनाथ पसाउलइ, कीयउ रास जगीस।
> च्यारि सइ त्रेसठि एहनी, गाथा ढाल छवीस ॥४६३॥

परिशिष्ट

([illegible] बोध से अमरसेन वयरसेन कथा)

[illegible] दृष्टांत सहित बोलइ । गाथाः—

[illegible] दाणं, भोगाणं कारणं सिवफलं च ।

[illegible] निव सूरसेणस्स ॥५२॥

[illegible]—

[illegible] दान भोगनउ कारण अनइ मोक्ष नउ पिण कारण हुवइ ।
[illegible] सूरसेन राजाना सुत बेहुं भाई रहइ ।

इति गाथाक्षरार्थः ॥

भावार्थ [illegible] जाणिवउ ॥

[illegible] । [illegible] नगर । तिहां [illegible] । [illegible] भार्या । ते बिहुं [illegible] । [illegible] जागइ । [illegible] । ते बेहुइ श्रेष्ठिना [illegible] बुद्धि निधान श्री धर्म बुद्धि [illegible] । [illegible] दिनइ [illegible] निमित्ति [illegible] चितववा [illegible] वेचवइ [illegible] अम्हारइ [illegible] । [illegible] जिन पूजा [illegible] उपवास [illegible] । [illegible] भावधन [illegible] । [illegible] धर्म [illegible] दान [illegible] श्रेष्ठि [illegible] । विम- [illegible] दुर्गत

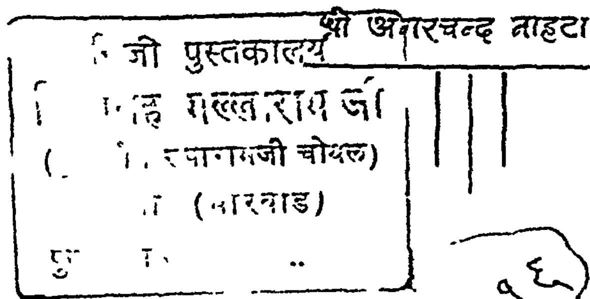
कुरु देश गजपुर नृप नी सेवा करिवा लागउं । ति[illegible] गाम च्यारि उलगहाटि आप्यां । सुकराभिधान [illegible] तिहा सुखइ रहइ । सूरसेन हिवइ तेहनी भार्या विज[illegible] देवी तेहनी कूखिइ ते कर्मकर अनइ गुवाल ना [illegible] मरी पुत्र पणइ ऊपना । अमरसेन अनइ वयरसेन [illegible] वइ नामइ । क्रमइ २ यौवनावस्था पामी । सकल [illegible] नइ विषइ कुशल हूवा । जननइ प्रीय गुण ना [illegible] स्थानक एहवा ते बिन्है पुत्र देखी सउकि माताइ [illegible] लगी राजाभ कहिवा । राजन् ए ताहरा पुत्र [illegible] दुःशील अनइ रागाधइ जे दिवस लगी तू [illegible] आणीयो ते दिन लगी माहनी प्रार्थना अनेके प्र[illegible] करतां । पिण मइ मोहइ कहिइ करी धीमनी [illegible] कीधी । हिवइ जि काइ ताहरा कुल नइ उचित हु[illegible] करि । इत्यादि वचन सांभली । राजा अजाण [illegible] परमार्थ अण विमासिइ गाम नउ मूलगउ मातग [illegible] आदेश दीधउ । जउ (माहरा) पुत्र बिहुं ना मस्[illegible] लेइ आवि । पछइ मातंग आदेश पामी जिहां अमर[illegible] वयरसेन छइ तिहा आवी राजा नउ आदेश कह्य[illegible] जउ राजाइ एहवउ आदेश दीधउ । पछइ बेई कहिवा लागा । अम्हारा मस्तक लइ राजा नउ आ[illegible]

प्रमाण करइ । पछइ मातंग चीतवइ राजा नउ आदेश साचउ हूं किम करूं । एतउ महापुरुष । पचइकुमारनइ कहिवा लागउ एहवउ कर्म हूं किम करूं हू पिण पमाउ करि देशातरि तम्हे पहुचउ । हूं चित्र कर पाहि ते माथा करावी । चीतरावी राजानइ देखाडिमो । इमउ साभली बेवइ बाधव देशातर भणी चाल्या । मातंग ते माया तिम करी राजानइं देखाड्या । हिव ते बात साभली मित्रइ माता हर्षी । हिवइ अमरसेन वइरसेने । मित्रेइ माता नउ विलसित जाणी आश्चर्य जोवानइ काजि देशातर भणी चाल्या । इसइ सध्याइ कोइ एक अटवी माहि गया । रात्रिइ वृक्ष एक न लइं बे बे बाधव सूता अटवी माहि भय जाणी । अमरसेन सूतउ वइरसेन पहुरइ वइठउ । एतलइ प्रस्तावि सूडी भूमिका स्थित सूडा नइ कहिवा लगी । भो स्वामिन्, ए बेवइ महापुरुष अखिया छइ । वृक्ष तलइं सूता छइ । तेहनर काई उपगार कीजइ । सूडइ कह्यउ आपणि पखी एह-नइ केहउ उपगार कीजिमइ तिसइ सूडीइं कह्यउ । स्वामी, साभलउ । सुकूट शैल तिहा विद्याधरें आपणी विद्यानी परीक्षा भणी विद्याइं अभिमत्री बे आंवा वाव्या छइ । तेहनउ एक फलजको वडा आंबा नी फल खाइ नेहनेइ सात दिन माहे राज हुइ । लघु आबा ना फल नइ भक्षणि प्रभाति कुकला करता पाच सइ दीनार पडइ । इसउ कही बेवइ पखी ऊडी आवा नी फलवे आणी । वयरसेन नइ उत्संगइ मूंक्या । पिण वइरसेन राज अणवाछतइ प्रभावि पिण कहइ । वडउ फल अमरसेन नइं दीधउ लघु आपण पइ लीधउ । पछइ बीजइ दिनि एकाकी वइसी । तलावि जाई कुरला करिवा लागउ । तेतलइ पाचसई दीनार मुखिहु तइ पडिया । तिवारइ पछी तिणइ द्रव्यइं भोजन वस्त्रादिक लेई सुखभोगवतां एकणि नगरि जाता सुख विलसतां । वइरसेन नगरी माहि वेश्या नइ घरि जाई राह्यउ । अमरसेन नगरी नइ परिसरि रहियो । एतलइ नगर नउ राजा मूंवउ । पंच दिव्य अधिवास्या अमरसेन कावन नगर नइ उद्यानि वनि वृक्ष मूलि सूतउ देखी पंच दिव्ये राजा अमरसेनि राजि वैसाड्यउ । वयरसेन कौतुकी हुंतउ । वेश्या रइ घरे रह्यउ । भाईइ जोया-वियो पिण लाधउ नहीं । अन्यदा मागधिका कुट्टिनीइ वइरसेन व्यापार रहित धनव्यय करतउ दीठो पूछयउ जउ प्रीयतम व्यापार विभइवडु खरिचव्यउकित पहुचइ छइ । मुग्ध स्वभावइं आवा नउ भक्षण काहिउ । जउ आम्रना भक्षण लगी पावसइ दीनार नो प्राप्ति तिसें वेसास पमाडी वमनना औषध देई आम्रफलनी गोठी पाछी वमावी । मुगधाइं लीधी । पछइ वयरसेन निद्रव्य जाणी घर हुंती काढ्यउ फल वेश्याइं लीधउ । तिसइ वयरसेन नगर छाडी उद्यान वलि विलक्ष हूतउ आव्यउ । इमइ रात्रिइ ३ वस्तु चोरी च्यारि चोर भाग नइ कीधइ कलह करवा लाग्या । पिण जे तीन वस्तु अनइ च्यारि चोर ते भाग मेलि किम ही न पडइ । इसइ वयरसेन चोर ... ... जाइं चोर नईं मिल्यउ । कलह स्वरूप पुछिवा लागा । ते कहिवा लागा । अनइं म्हे च्यारि चोर एक कंथा लकुट पादुका ए वस्तु त्रिणि वहिची दिइ । वइरसेन कह्यउ । कउण प्रभाव वस्तु-नउ । ते कहिवा लागा । एक सिद्ध पुरुष तिणि छ मास ताई देवतानउ आराधन कीधउ । तीणि देवना तूठोइ ए त्रिणि वस्तु आपी । तेहनउ ए प्रभाव । कथा झाटकीइं तउ पाचसइ दीनार पडइ । लकुटनी प्रभाव तउ शस्त्र न लागइ ।

पाऊआ नइ प्रभावि आकाश गामिनी विद्या हुइ जिम आकाश गामिनी विद्या हुइ जिम आकाशि ऊडीइ । एहवउ प्रभाव साभली कुमारि कह्यउ मइं पुरा पूर्विइं योगी नुं वेष पहिरियो नथो । ते एक वार कहउ तउ पहिरी जोउं । तीए कह्यउ एक वार पहिरि । पछइ कुमारि कंथा पहिरी लकुटी हाथि कीधउ पाउआ पवि घाल्या । अनइ कुमार आकाशि ऊडनउ । चोर बंच्या हुता यथा स्थानकि पहुंता । वयरसेन वली तीन वस्तु नइ प्रभावि नगर माहि भोग भोगवइ । केतले दिने तिणि कुट्टिनीइं वयरसेन भोग भोगवतउ देखी वली प्रपंच करी आपणइं घरइं आव्यउ । केतले

[illegible]

पुत्र फाटुरा मेइ नागिक लागउ हूं तेहनइं पगइं थल-री तिरि रहा मूंकी। तिरि वह्न कहि तूं पाम्यउ तिम। कुमार कहइं पश ना प्रमार रागी हु उहां श्रान्तउ। वेश्या पूछइ। तुझ नइ पशि काइ दीसउ कुमार रहउ मुझनइ श्रोषधि दीधी। जिणि जरा जायइ योवन श्रावइ। एहवइ वेश्या लोभ लगी कहिवा लागी मुज नइ श्रोषधी श्रापि। कुमारि तत्काल ते फूल सूंघाड्या। तेतव मगधा फीटी रासभी थइ कुमार लकुट लेई रासभीइं चड्यउ। पछइ ऊमइ चउहटइं लकुटइ कूटइ। लोक मिल्या कहइ। श्रहो कुमार मूंकि। कुमार न मूंकइ। तेतलइ सवं वेश्या पुकार करवा लागी। तेनइ कुमार अन्यापराण करवा लागा। तिसइं कुमार लकुटि ते तिम। हण्या जिम तीए जई राजा वीनव्यउ। पछइ राजा सपरिवार ले कटक लेई जउ श्राव्यो। तउ श्रोलखियो भाई राजा पछइ प्रपच जाणी कुट्टिनी मूंकावी। वेवइ भाइ मिल्या महा प्रमोद ऊप-नउ। पछइ माता पिता गाम हूता श्रणावी राज करवा लागा। अन्यदा ते वेवइ गउखि वइठा मुनि युग देखी जाती स्मरणज्ञान ऊपनउ। जातिस्मरण उप.... ... ...वाहिवा लागा महात्माए श्रवधि ज्ञानी विशेष पूर्वभव कह्यउ। जउ साधु महात्मा नइ जे भवा तरइ दान दीधउ तेह लगी राज्य नइ फल पाम्यउ। श्रनइ ने पाके कउडेफूल लेई जिन पूज्या। ते दिनइ प्रमाणि पांच सइ दीनार नी भोग प्राप्ति हुई। फल विहुनइं देव लोक नर भव नाई। भोगवी वी छठउ भवि पूर्वविदेहइ राज्य भोगवी नीराग सयमइं तु मोक्षनी प्राप्ति हुई। इमउ पूर्वभव नवस्वरूप साभली दान प्रभावजाणी अनेक सूत्रकार करावी जिन चैत्य करावी सप्त क्षेत्रइं धन-वावी प्रानि थालि चारित्र लेई पाचमइं देवलोकि पहुता। पूर्वोक्त क्रमहि महाविदेहइं मोक्ष जासइं। इणि रीति सुपात्रदान लगी जिम श्रमरसेन वइरसेन नइ सम्पदा चडती हुई। तिम वीजाई विवेकी सुपात्र दान लगी सपदा पामइ॥ इतिश्री श्रमरसेन वयरसेन कथा॥ ८॥



कच्छ में रचित पद्यवद्ध हिन्दी संगीत ग्रन्थ

संगीत भारत की प्राचीन विद्या या कला है। इसके सवध मे प्राकृत, मस्कृत, हिन्दी, कन्नड आदि भापाओं मे काफी साहित्य उपलब्ध है। मवत् १६०० से लेकर अव तक चार सौ वर्षो मे पद्यबद्ध हिन्दी रचनाए भी पर्याप्त परिमाण मे लिखी गई पर वे अधिकाश अप्रकाशित है' मैंने कई वर्ष पूर्व रागमाला आदि सगीत विपयक हिन्दी रचनाओ का विवरण अपने लेख एव खोज-रिपोर्ट मे प्रकाशित किया था और हाथरस मे प्रकाशित 'सगीत' मे भी इस विपय के साहित्य पर प्रकाश डालता रहा हू।

कच्छ जैसे अहिन्दी-भापी प्रदेश में महाराव लखपत के समय मे हिन्दी का उल्लेखनीय प्रचार हुआ। वहा व्रजभापा और काव्य की शिक्षा के लिये निःशुल्क विद्यालय राव लखपत ने खोला और जैन यति कनककुशल तथा कुवरकुशल को उस विद्यालय का आचार्य वनाया गया। इन दोनो गुरु शिष्यो ने व्रजभापा मे कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं और महाराव लखपत व उनके आश्रित कवियो ने भी व्रजभापा मे उल्लेखनीय साहित्य निर्माण किया है। वहाँ रचित कतिपय सगीत ग्रन्थो की सामग्री भी प्रकाश मे आई है, जिनमे से 'सुरतरगिनी' और 'मृदग मोहरा' महाराव लखपत के रचित है और रागमाला जैन यति कुवरकुशल ने राव लखपत के लिए टीका सहित वनाई। इसी प्रकार आवेर

[illegible] ने कुछ शास्त्र पर [illegible] किया है। [illegible] पश्चिम [illegible] महाराज [illegible] सम्प्रदायों को [illegible] आश्रय दिया। [illegible] योग दिया। प्राप्त रचनाओं को [illegible] है।

(१) गुणतरंगिनी

[illegible] का लिखा हुआ संगीत शास्त्र का ग्रन्थ है, जो [illegible] किया गया है। इस ग्रन्थ की रचना संवत् [illegible] है। [illegible] इस प्रकार से हुआ है —

> [illegible] नमः । ॐ नमः ।
> [illegible] कृपा सुखदाई ।
> [illegible] संगीत बनाई ॥
> [illegible] मन जान ।
> [illegible] प्रकाश हिय आनि ।
> [illegible] कृपा करि आई ।
> [illegible] विनती सुखदाई ॥
> [illegible] सुखदानी हीय आनि ।
> [illegible] इनाइतखानि ॥
> [illegible] मुनि जोई ।
> [illegible] मन बच क्रम के सेई ॥
> [illegible] कठिन सुजान ।
> [illegible] प्रिय सुखदान ॥
> [illegible] सुखसार ।
> [illegible] गुणतरंगिनी चारु ॥
> [illegible] सुखसार ।
> [illegible] ग्रन्थ सुखसार ॥
> [illegible] सुखदाई ।
> [illegible] साथ ॥

ग्रन्थ का उपसंहार इस प्रकार किया गया है —
पूरन रस जामे रहो, मोई रसिक सुजान ।
रजक सबके मनन को, सो रजक सुपदान ।।
रागादिक गीतादि मे, हाव भाव रस भेद ।
सबको नीको कर कहो, भावक लछन वेद ।।
तानसेन मत ग्रानके, मरतहि चित लगाये ।
सगीत मुर्छन ग्रादि सब, दीनहि भेद बताये ।।
इति श्री सुरध्याय सुरतरगिनी ग्रन्थ सपूर्ण समाप्त ।।
श्री कल्याणमस्तु । श्रीरस्तु ।

श्री १८८६ ना वर्षे वैसाख मास शुक्ल पक्षे । प्रतिपद्याया तिथौ नाम वासरे । लिखावित चिरजीव दिन-दिन ग्रधिक प्रताप राउ श्री भारमल्लजी तस्यात्मज चिरजीवी राउ श्री देशलजी दिन दिन ग्रधिक प्रताप, लिखित धारक प्रागजी हरजी ग्राणी श्रीभुजनगर मध्ये ।। श्री श्री श्री : ।।

इस ग्रन्थ मे नादस्तुति के पश्चात् ब्रह्मशक्ति का सक्षिप्त निरूपण है और सगीत के लक्षण दिये गये है । सगीत कर्ताओ की परपरा का उल्लेख कर लेने के बाद सगीत के भेद बताये गये हैं । "ग्रथ उदेश बर्नन प्रकरण" मे शारीरिक सूत्र के ग्रनुसार पाच तत्वो के स्वरूप का निरूपण है ग्रौर योगके षट् चक्रो का भी वर्णन है । 'नाडी वर्णन', 'नाद महिमा' ग्रौर 'नाद उत्पत्ति' ग्रादि के पश्चात् राग-रागिनियो के लक्षण विस्तार मे लिखे गये हैं । राग-रागिनियो के सबध मे विभिन्न मतो का भी उल्लेख किया गया है । उदाहरण के लिये इस ग्रन्थ का 'मेघ मल्लार' विषयक विवेचन यहा प्रस्तुत किया जा रहा है ।

ग्रथ मेघ—कामादेरु कल्याण मिलि, पुनि सावत वसत ।
गावत मेघ सरूप को, मिलिके सत ग्रसत ।।
वडहसरू मधुमाध मिलि, सावत ग्ररु सारग ।
गावत मेघ बनाइ के, चारो को ले सग ।।
सारग सोरठ जुगल मिलि, ग्रौर विरागी रग ।
ऐसे कहत मलार को, जे है गुनि सुदग ।।

द्वितीय मत—गौड बराबर कान्हरा, तीनो मिल के होय ।
त्यो बिलार गोसी सुमत, कहत गुनिजन लोय ।।

[illegible] मोरठ सुरमिले, घोर अडाना संग ।
[illegible] मुदित रहे, यो मल्लार को अग ॥

[illegible] में राग-रागिनियों का स्वरूप-निरूपण भी बडा सरस है । [illegible] उदाहरण दिया जा रहा है ।—

[illegible] के रंज कर, इदीवर से नेन ।
[illegible] कर में लिये, मुसिकनि है मृदु मेन ॥
पूजि-पूजि [illegible] में प्रगन भैरव को सुप देन ।
भैरव [illegible] भैरवी, मृगदृग दीरघ नेन ॥

ग्रन्थ के रचना-काल को देखने से प्रतीत होता है कि इसकी रचना [illegible] ने अपनी युवराजावस्था मे ही की थी । इस ग्रन्थ के आदि, मध्य [illegible] भी लेखक ने अपना नाम नही दिया है । यह एक विचार-[illegible] क्योंकि महाराज जगपतिसिह के जो ग्रथ उपलब्ध हैं, उन सबमे [illegible] अपना नाम दिया है । इस ग्रन्थ मे जिन उस्ताद इनायतखान का आरभ मे [illegible] उनके सबध मे भी कोई विशेप जानकारी प्राप्त नही हो पाई है ।

(२)मृदग मोहरा

महाराज जगपतिसिह के इस ग्रन्थ का उल्लेख प्राय. सभी ने किया है, [illegible] कोई स्वतन्त्र ग्रथ अभी तक मेरे देखने में नही आया है । [illegible] के [illegible] संग्रह मे मुझे ऐसे बहुत से पन्ने अवश्य देखने को मिले, [illegible] प्रकार के बोलो का सग्रह है । हो सकता है, जिसको '[illegible]' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ माना जाता है, यह मृदग के बोलो का [illegible] । इस ग्रन्थ के विषय मे वर्तमान स्थिति में कुछ अधिक कहना [illegible] ।

(३) रागमाला

[illegible] संगीत-शास्त्र के भी आचार्य थे । इस ग्रन्थ मे उन्होंने राग-रागिनियों के स्वरूप और लक्षण लिखे है और उनकी गद्य मे टीका भी की है । '[illegible] रागिनी' का एक उदाहरण दिया जाता है.—

सवैया—[illegible] है, विराजै चौर करनी को
[illegible] बसन मन भावन ।

अलकैं है सीस परि फलकैं ललवानी की,
चीर हैं विचित्र और वीर छवि छावने ।
अलि मनभाई सदा कत मुखदाई सही,
ओपित अधिक सुर अनत जगावने ।
कहे कु अरेस लषमिंघ यासौं रीझत हैं,
विदित वरारी याके बोल है सुहावने ॥

याकौ अर्थ ॥ काननि मैं नीके फूल है । हाथ मे चावर है, करके ककन वलपानि की धुनि अपने प्रीतम कौ सुनाय मन राजी करति है । सीस पर अलकैं नीची फलकति है । विचित्र चीर पहिरे है । और चीर की छवि छोनक रिझारी है । कंत को वहुत नीकी लागत है । जाकी दुति काम कैं जगावति है। कु अरेस कवि कहत है लषसिंघ भूप यासौं रीझत है । प्रगट ही वरारी के सुहावने बोल है । इति वरारी ॥

— फकीरचंद —

महाराव लखपतिसिंह के आश्रय मे जिन अन्य कवियो और कलाकारों ने उल्लेखनीय कार्य किया है, उनमे सगीताचार्य मायाराम चौहान के पुत्र फकीरचंद का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । फकीरचद अपने पिता के साथ आमेर से आये और महाराव के दरबार मे उनको अपनी प्रतिभा के विकास के लिये उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ । उन्होंने नृत्यशास्त्र पर 'नृत्य सुधारस मंजरी' नामक एक बडा सुन्दर ग्रन्थ लिखा । इस ग्रन्थ का आरभ और अत यहा दिया जा रहा है—

आरंभ—श्री गणेशाय नम । श्री गुरुभ्यो नम । श्री आसापुरी सत्य छे ।

अचल सहर भुज मे प्रगट, सोभित सर वनराय ।
महाराउ लषपति को, सदा प्रसन सुपदाय ॥
जिते नृत्य के भेद है, तिते प्रगट या माहि ।
सो सब गुरुमुष साधियैं, तो रतिरस सरसाहि ॥
जो याको देषे सुनैं, ताकै सब दुष जाय ।
आनद मगल हो अचल, दिन-दिन सुप अधिकाय ॥

× × × ×

[illegible] हरि आधीन ।
[illegible] नाटकी, जिन रस रस लीन ॥

[illegible] - मयाराम नरुआन सुत, फकीरचद यह कीन्ही ।
[illegible] मजरी, चातुर चित नवि लीनी ॥
जब लगि रवि ससि ध्रुवधरा, सात समुंद दरसाहि ।
[illegible] मजरी, तब लगि थिर जग माहि ॥
इति श्री [illegible] मजरी नरुआन मयारामसुत फकीरचद
कृत सम्पूर्ण ॥

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि एक ओर महाराव लखपतिसिंह स्वय विद्या और कलाओ को सब प्रकार से प्रोत्साहन दे रहे थे तो दूसरी ओर उनके द्वारा स्थापित पाठशाला मे विद्वानो और कवियो को प्रशिक्षित भी किया जा रहा था । व्रजभाषा पाठशाला मे आचार्य कनककुशल और कुंअरकुशल की परम्परा मे जितने आचार्य हुए, वे सब विद्वान और कवि थे परन्तु उनके लिखे हुए ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नही हुए है ।

[illegible] ने महाराव लखपतिसिह के अनेक गायक और गायिकाओ का वर्णन किया है, जिनको उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रदेशो से बुलवाकर आश्रय दिया था और इस प्रकार सगीत कला के विविध अगो के उन्नयन में महत्त्वपूर्ण योगदान किया था । सगीत के सब अगो के पूर्ण ज्ञाता इन कलाकारो मे मयाराम और उनके पुत्र फकीरचद का स्थान सर्वोपरि प्रतीत होता है । मयाराम को महाराव ने आमेर से बुलवाया था । कुंअरकुशल का कहना है कि जिस समय शिव-पार्वती ने मिलकर नृत्य किया, उस समय उनके चरण [illegible] रेणु इन्हे प्राप्त हो गई । इसी से मयाराम संगीत और नृत्य के [illegible] ज्ञाता और प्रयोक्ता बन गये ।

नाहटों की बड़ी गुवाड़
बीकानेर

चर्चरी-संज्ञक अप्रकाशित रचना

श्रीअगरचन्द नाहटा

चतुष्पथ मे गाई जानेवाली रचनाओ की सज्ञा 'चर्चरी' है। चतुष्पथ के लिए 'चच्चर' शब्द का प्रयोग प्राकृत मे २५०० वर्ष से भी पुराना है। ज्ञाताधर्मकथाग, प्रश्नव्याकरण आदि प्राचीन आगमो और वसुदेवहिण्डी जैसे प्राचीन कथाग्रन्थो मे इस शब्द का प्रयोग हुआ है। 'पाइयसद्दमहण्णवो' मे चच्चर का अर्थ चौहट्टा, चौरस्ता, चौक दिया गया है और 'चच्चरिया' (चर्चरिका) को नृत्य-विशेष बतलाया गया है। चच्चरि या चर्चरी के अर्थ बतलाते समय १ गीत-विशेष, एक प्रकार का गान, २ गानेवाली होली, ३. छन्दोविशेष, ४. हाथ की ताली की आवाज ये चार अर्थ दिये हैं। 'चर्चरी' शब्द का प्रयोग जितना प्राचीन है, उतनी प्राचीन चर्चरी-सज्ञक रचनाएँ नही प्राप्त होती।

उपलब्ध रचनाओ मे आचार्य जिनदत्तसूरि-रचित चर्चरी ही सबसे प्राचीन ४७ पद्यो की अपभ्रंश-रचना है। जिनपालोपाध्याय की वृत्ति-सहित यह रचना अपभ्रंश काव्यत्रयी मे प्रकाशित हो चुकी है। सवत् ११६७ से १२०० के बीच मे इसकी रचना वागड देश के व्याघ्रपुर के धर्मनाथ जिनायतन मे जिनदत्तसूरिजी ने की थी। टीकाकार ने प्रारम्भ मे लिखा है: इय च मधममञ्जरीभाषया नृत्यद्भिर्गीयते। सवत् १२९५ मे रचित 'गणधर सार्धशतक बृहद्वृत्ति' मे इस चर्चरी के प्रभाव की महत्त्वपूर्ण चर्चा। उसमे लिखा है। "वहाँ से फिर वागड़ देश मे आये। व्याघ्रपुर मे जयदेवाचार्य से भेंट हुई। महाराज ने जयदेवाचार्य को उज्जैन भेज दिया और स्वयं व्याघ्रपुरी मे रहकर श्रीजिनवल्लभसूरि-प्ररूपित, चैत्य-गृह विधिस्वरूप 'चर्चरी' काव्य की रचना की। उसका गुटका बनाकर मेहर, वासल आदि श्रावको को ज्ञान के लिए विक्रमपुर भेजा। विक्रमपुर मे देवधर के पिता सण्हिया के घर के पास पोषधशाला मे एकत्र होकर श्रावको ने वह चर्चरी पुस्तक खोली। उसी समय उन्मत्त देवधर ने अचानक कही से आकर चर्चरी-पुस्तक श्रावको के हाथ से छीनकर फाड डाली। वे लोग उस उन्मत्त का कुछ भी न कर सके। उसके पिता से शिकायत की, तो उसने कहा, यह तो प्रमादी है; इसका क्या इलाज किया जाय, तथापि हम उसे समझा देंगे। वह आइन्दा ऐसी हरकत नही करेगा।' श्रावको ने सर्वसम्मति से पूज्यश्री को एक पत्र दिया। उसमे भेजी हुई चर्चरी-पुस्तक के फाडे जाने का हाल लिख दिया। पत्र-लिखित समाचारों को जानकर पूज्यश्री ने दूसरी चर्चरी-पुस्तक लिखवाकर भेजी और उसके साथ पत्र मे यह भी लिखा कि 'देवधर को खोटी-खरी कुछ भी मत कहना। देवगुरुओ की कृपा से यह थोड़े दिनो मे ही सुधर जायगा।' 'चर्चरी'-काव्य की दूसरी पुस्तक को पाकर सब श्रावकों ने एकत्र होकर उसे खोला और पढने से सबका अतीव सन्तोष हुआ। देवधर को मालूम हुआ कि दूसरी पुस्तक आ गई है, तो उसने सोचा कि 'एक तो मैंने फाड़ डाली थी।

[illegible] और नालियाँ सुव्यवस्थित रूप से निर्मित हुई थीं। मार्ग प्रशस्त थे [illegible]। [illegible] मार्गों के समीप उपयुक्त नालियाँ थीं, जिनसे [illegible]। [illegible] पात्र में रख दिये [illegible] जाता था।

[illegible] स्नानागार होता था, जिसके साथ आधुनिक काल के किसी स्नानागार की [illegible] है। एक ऐसा स्नानागार भी आविष्कृत हुआ है, [illegible]। मार्शल ने इसे 'हमाम' कहा है।

[illegible] व्यवहार करते थे। वे सोना, चाँदी, ताँबा, जस्ता और [illegible] से परिचित थे। सम्भवतः, लोहा का व्यवहार उन्हें अज्ञात था। ऐसे [illegible] ईंटों का व्यवहार किया गया है। मन्दिर और [illegible]। एक स्थान से [illegible] मिले हैं, जिनसे पता चलता है, कि [illegible] का व्यवहार करना जानते थे। स्त्री पुरुष नाना प्रकार [illegible] व्यवहार करते थे। नगरवासियों के धर्माचरण पर विचार करने [illegible] नहीं था।

प्राचीन भारत के नगरों के सम्बन्ध में संस्कृत [illegible] ग्रन्थों में जो विवरण मिलते हैं, [illegible] होता है कि भारतीय सभ्यता यद्यपि ग्रामप्रधान थी, नगरप्रधान नहीं, [illegible] नगरों के निर्माण, उनकी समुन्नति तथा समृद्धि में भारत उदासीन नहीं था। [illegible] प्राचीन नगर आधुनिक नगरों की अपेक्षा कम सुखप्रद नहीं थे और नागरिक [illegible] सुविधा-सम्पन्न बनाने में कोर-कसर नहीं की गई थी। ★

लहेरियासराय (दरभंगा)

फिर, आचार्य ने भेजी है, तो जरूर इस पुस्तक मे कोई रहस्य छिपा हुआ है। जैसे भी हो, यह बात जाननी चाहिए, देखें इसके अन्दर क्या लिखा है ?' एक दिन श्रावक लोग अपने नित्य नियम से निवृत्त होकर चर्चरी-पुस्तक को स्थापनाचार्य के पास आले में रखकर पोषधशाला के कपाट बन्द करके चले गये। देवधर को मौका मिल गया। वह अपने घर के ऊपर भाग से उतरकर पोषधशाला में आ गया और यथास्थान रखी हुई उक्त पुस्तक को बड़े चाव से पढ़ने लगा। गाथाओ का अर्थ समझने से मन में आह्लाद आने लगा। 'अनायतनं विभ्वम्', स्त्री पूजां न करोति, ये दो पद उसकी समझ मे नही आये। पुस्तकोल्लिखित जैनधर्म के उच्च रहस्यो को समझकर उसके मन मे जैन सिद्धान्तों के प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई और उसने अपने मन मे यह संकल्प किया कि मैं भी इस मार्ग का अनुसरण करूँगा।''

१३वीं-१४वी शती मे रास और धवल की तरह चर्चरी भी अभिनय के साथ गाई जाती थी। युगप्रधानाचार्य गुर्वावली मे चार स्थानो मे उसका उल्लेख हुआ है :

१. "पुरमध्ये स्थाने स्थाने रङ्गभरेण प्रेक्षणीयके निष्पद्यमाने, दाने च व्याप्रियमाणे, चच्चर्यां दीयमानायां, धवलेषु गीयमानेषु।"

२. "स्थाने स्थाने प्रमुदितजनेन दीयमानेषु प्रधानरासकेषु, नानाविपणिमार्गेषु गीयमानेषु विविधप्रवरचच्चरीश्रेणिशतेषु।

३. "वाद्यमानासु ढोल्लपरम्परासु, मार्गेषु स्थाने स्थाने दीयमानासु चच्चरीषु, वाद्यमानेष्वहर्निशं द्वादशविधनान्दीतूर्येषु।"

४. "दीयमानासु महामिथ्यात्वप्रतिपन्थिमर्मव्यथनकर्त्तरीषु चच्चरीषु।"

२. 'प्राचीन गुर्जर काव्य-सग्रह' मे सोलण कवि द्वारा रचित 'चर्चरिका' प्रकाशित हुई है। उसमें ३८ दोहे है। भाषा को देखते हुए यह रचना १४वीं शती की लगती है। उसमे गिरनार के नेमिनाथ की यात्रा करने की उत्कण्ठा और रास्ते के स्थानों आदि का उल्लेख है। प्रारम्भ के तीन पद्य इस प्रकार हैं :

"जिण चउवीस नमेविणु सरसइपय पणमेवि।
आराहउं गुरु अप्पणउ अविचलु भावु धरेवि ॥१॥

कर जोडिउ सोलणु भणइ जीविउ सफलु करेसु।
तुम्हि अवधारह धमियउ चच्चरि हउं गाएसु ॥२॥

मणि उमाहउ अमि मुहु मोकलि करिउ पसाउ।
जिम्व जाइवि उज्जितगिरि वदउं त्रिहुयणनाहु ॥३॥'

मुसलमान कवि अब्दुल रहमान ने सन्देशरासक के वसन्त-वर्णन मे चर्चरी का उल्लेख किया है :

"चच्चिरिहिं गेउ नेउ हुणि करिवि तासु, नच्चीयइ अइव्व वसंत कालु।"

[illegible] चर्चरियाँ :

जैसलमेर के [illegible] ज्ञान-भण्डार में चार अज्ञात चर्चरियाँ प्राप्त हुई थीं, उनका [illegible] परिचय नीचे दिया जा रहा है :

१. चर्चरी—इसमें गिरनार, शत्रुंजय और स्तम्भन पार्श्वनाथ तीर्थ और [illegible] की पूजा का उल्लेख है। ३० पद्यों की इस रचना के प्रारम्भ और अन्त के पद्य इस प्रकार हैं :

> "[illegible] पट्टु रिसह जिण वीरह चलण नमेवि ।
> [illegible] मणि भाउ करि दुह जिण मणि सुमरेवि ॥१॥
> [illegible] जिण भुवणि, जे चाचरि पभणंति ।
> [illegible] निवारि नर ते सिव सुह पावंति ॥३०॥"

२. धर्म चर्चरी—२० पद्यों की इस रचना में धार्मिक उपदेश विशेषकर [illegible] के १२ [illegible] का वर्णन है। प्रारम्भ और अन्त के पद्य इस प्रकार हैं :

> "सुमरे [illegible] वीर जिणु पभणिसु सावय धम्मु ।
> जो [illegible] मणि, सो नरु पावइ सम्मु ॥१॥
> जे आराहइ गुरु चलण, जिणवर धम्मु करिंति ।
> ममारिम सुहु अणभविय, सिवपुरि ते विलसंति ॥२०॥"

३. जिनप्रबोधसूरि चर्चरी—रवि सोममूर्ति-रचित १६ पद्यों की इस रचना में [illegible] के आचार्य जिनप्रबोधसूरि का वर्णन है। जिनेश्वरसूरि के पट्ट पर उनकी [illegible] जिनरत्नसूरि ने जिनप्रबोधसूरि को स्थापित किया था। संवत् १३३१ में जिनप्रबोधसूरि का आचार्यपद-महोत्सव हुआ। यह रचना उसी के आसपास की है।

४. जिनचन्द्रसूरि चर्चरी—जिनप्रबोधसूरि के पट्टधर जिनचन्द्र सूरि जालोर में संवत् १३४१ में आचार्य-पद पर स्थापित हुए, उन्हीं का इसमें वर्णन है। २५ पद्यों की इस रचना को [illegible] गणि ने बनाई है। आदि-अन्त के पद्य इस प्रकार हैं :

> "[illegible] वीर जिणु, कंचणु वन्नु सरीरो ।
> [illegible] यह [illegible] दुह [illegible] नीरो ॥१॥
> [illegible] जिणचंदसूरि जे चाचरि पभणंते ।
> [illegible] गणि [illegible] मणवंछिउ ति लहते ॥२५॥"

[illegible] रचनाएँ १४वीं शती की हैं। वैसे हिन्दी में भी [illegible] १९वीं शती तक रही है। पर, ऐसी रचनाएँ अधिक [illegible]। [illegible] की दो हस्तलिखित प्रतियों में तुलसीदास और [illegible] चर्चरी लिखी मिली है।

[illegible] द्वारा रचित चर्चरी इस प्रकार है :

> "[illegible] ॥राग [illegible]॥
> [illegible] छबि निरख चतुर मन मेरे ।
> [illegible] सुधन सुशील तेरे ।

भाल विसाल विकुट त्रिकुटी बिच तिलक रेप रुचि राजै ।
मानुह मदन तम तकि मरकत घन, जुगल कनक सरसाई ।
सोभित श्रवनि कनक कुंडल छवि, अति लवित भुज मूल ।
केकी ताकि ग्रह्यो चाहंत मानु उर गयद प्रतिकूल ।
चार पलक लोचन विव तारक स्याम अरुन अतिकोए ।
मानु अलिनलिन सरद को समहि वंधु कर्सन रुचि सोऐ ।
अरुन अधर तर डसन पतिवर मधुर मनोहर हास ।
मानु सुभग सरतिनमैं कुन्दसनि तटिन सहित कियो वासं ।
विलुलित ललित कपोलन परि कचमेचक कुटिल सुहाऐ ।
मानुं विधु मैं,वनरुह विलोकि छवि बिपुल सुकीतिकि आऐ ।
चार चिवुक मुक तुंडव निंदित. सुभग सऊनति नासा ।
तुलसीदास सुख धाम राम छवि सुपद समद भवतासा. ।।१।।"

बीकानेर के महाराजा गजसिंहजी-रचित दो चर्चरियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमे एक बड़ा चर्चरी ६१ पद्यों की है । आदि-अन्त के एक-एक पद्य यहाँ दिये जा रहे हैं :

"हीरन के खंभ अरु मानक की खूभी ।
नगन जटत मिंदर तामैं चंद्रमुखी ऊभी ।।१।।

चरन सरन गज जन-मन वंछित फल आव ।
पदन सू निरन्न रक्त प्रेम भक्ति पावैं ।।६१।।"

छोटी चर्चरी आगे पूरी दी जा रही है :

"अथ चरचरी राग भैरू ।
अब तो लाल जागो क्यो न नंद जू के वाला ।।टेक।।
मोर मुकुट कुटिल अलिक लोचन रस लाला ।।१।।
विद्याध्ययन वेदोकति विप्रन धुनि कीनी ।
अरुणोदय अरघ नरन सूरज कौं दानी ।।२।
अलिन बंध छूट अब कमल न तूं आए ।
नाना कुसम गंध लैन लंपट लपटाए ।।३।।
जमुना उपकठ रव कंठी रव कीनो ।
आठ गाठ लगे द्विरद सुनकैं मद छीनो ।।४।।
पंछी कुंज कुंजन मैं केकी पिक बोले ।
काम करन सुघर घरन घरन द्वार खोले ।।५।।
दधि मथन गोपिन निज मंदर मैं कीनो ।
राज पौर नोवत मैं भैरु सुर लीनो ।।६।।
जोति चंद मंद भई उडगन गन बीते ।
चकवी पिय मिलन गई तरुण तिमर जीते ।।७।।

[illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] हू दिसन बिचरे ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मोर मंचरे ॥८॥

[illegible] [illegible] [illegible] नृपति [illegible] कीनो ।
[illegible] [illegible] सुनी नाम [illegible] लीनो ॥९॥

[illegible] [illegible] ठाडे चार चतुर बाला ।
[illegible] [illegible] मोर [illegible] होवै [illegible]-माला ॥१०॥

[illegible] [illegible] [illegible] नैन बैन लै [illegible] ।
[illegible] [illegible] तान सप्त सुरन गाई ॥११॥

[illegible] [illegible] [illegible] मिल दिल किलोल धरियै ।
जमुना तट [illegible] पर यहो राग करियै ॥१२॥

[illegible] को [illegible] [illegible] पर राजे ।
तीन ग्राम सपत सुरन मुरली धुनि बाजे ॥१३॥

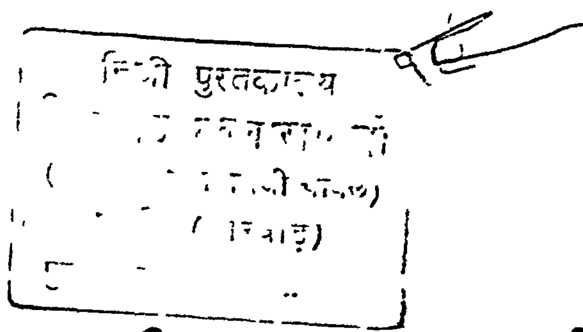
[illegible] [illegible] गुपाल मिल ऐसो राग कीनो ।
[illegible] मंद [illegible] [illegible] सतरंग भीनो ॥१४॥

[illegible] [illegible] [illegible] सुर नवल होन लागे ।
[illegible] [illegible] रहे सुनकै रस पागे ॥१५॥

[illegible] [illegible] [illegible] हिय ध्यान मैं न आवै ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कोई गोपन मैं गावै ॥१६॥”

[illegible] रचनाएँ अपभ्रंश, राजस्थानी हिन्दी में १२वीं से १८वीं [illegible] की मिलती है । चर्चरी छन्द एव राग का भी नाम है ।

[illegible]



गोपाल व्यास रचित अनुभव सार की महत्वपूर्ण प्रशस्ति

श्री अगरचन्द नाहटा

'विश्वम्भरा' के वर्ष ५ अंक २ में डा० दिवाकर शर्मा ने अपने 'आयुर्वेद को बीकानेर मण्डल की देन' नामक लेख में वैद्य गोपाल व्यास रचित अनुभव सार का विवरण प्रकाशित किया हैं। अनूप संस्कृत लायब्रेरी में इस ग्रन्थ के १९ पत्र है।

हमारे संग्रह में इस ग्रन्थ की एक और प्रति है। यद्यपि उसके बीच के कुछ पत्र गायब हैं फिर भी अन्तिम पत्र प्राप्त होने से ग्रन्थ का रचनाकाल आदि निश्चित हो जाता है। इस प्रति के अनुसार डा० दिवाकर शर्मा उल्लिखित क्वाथाधिकार हमारी प्रति के पत्रांक १५ में समाप्त होता है। उसके बाद लवणभास्कर, सुदर्शनादि चूर्ण का चौथा अधिकार छोटा ही है। पाचवें मे कुप्माऽ आदि पाकों का विवरण है फिर गुटकाओं का विवरण है। इसमें एक जगह योग चिन्तामणि' का उद्धरण है, जो सम्भवत: जैन विद्वान् हर्ष कीर्ति रचित ही होगा। उसका रचनाकाल भी १७वीं शताब्दी ही है। छठे अधिकार के प्रारम्भ में गंधक शुद्धि का प्रसंग चला है। रसेन्द्रमारण विधान के बाद स्वर्णमारण की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है उसके बाद के कुछ पत्र हमारी प्रति मे नहीं हैं। अन्त में पथ्यासादि अधिकार १०वा पूर्ण होने के बाद प्रशस्ति ६ श्लोकों मे दी गई हैं। इसके पहले श्लोक मे कल्याणमल और रायसिंह का वर्णन है। दूसरे श्लोक से कवि ने अपना वंश परिचय दिया है। पांचवें श्लोक के अनुसार ग्रन्थ की रचना संवत् १६५६ में हुई थी व छठे श्लोक में प्रभासतीर्थ में श्री सोमनाथ के सामीप्य मे इस ग्रन्थ के पूर्ण होने का उल्लेख किया गया है। हमारे संग्रह की प्रति नं० १७७१ फागण सुदी १ को हाजीखान में पंडित युक्तिसुन्दर गणि ने लिखी है। अर्थात् मिन्धु

[illegible] के द्वारा लिखी हुई यह प्रति महत्वपूर्ण है। बीच में कुछ पन्ने नहीं लिखे [illegible] पूरी प्रति की खोज आवश्यक है।

डा० [illegible] शर्मा ने बीकानेर मण्डल में रचित आयुर्वेद के विविध ग्रन्थों के परिचय में इस ग्रन्थ का जो परिचय दिया है वह विस्तृत नहीं है परन्तु अभय जैन ग्रन्थालय में प्राप्त प्रति में जो प्रशस्ति है उसमें महाराज रायसिंह के काल की ओर बीकानेर के अन्य नरेशों के काल की अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है इसलिए हम उस प्रशस्ति को अविकल रूप में उद्धृत कर रहे हैं—

श्री गोपाल वैद्य कृत

अनुभवसारः

सिन्दूरपूराञ्चितरक्तपाणिकुम्भप्रदेश. शिवमातनोतु ।
स विघ्नवल्लीदलनैकदक्षः, श्रीढुण्ढिराजस्तव[1] राजसिंहः ॥१॥
कर्पूरपूरविलसोल्लसदंशुकान्तां,
श्रीशारदा वरकमण्डलुदण्डहस्ताम् ।
पद्मासनां प्रवरपुस्तकरम्यपाणिं,
नित्यं श्रये शशधवलद्विमलाक्षमालाम् ॥२॥
पीताम्बरां मलयजाद्रदकप्ररूपां,
पद्मासनां मदविघूर्णितनेत्रपद्माम् ।
[illegible] मदकुमुदगुणग्राधिलक्ष्मीं,
तां यक्षिणीं मुरारिसमन्दिरां श्रयामि ॥३॥
[illegible] नितम्बदेशा, नमामि विष्णोर्भगिनीं मुदाऽहम् ।
यस्याः[2] प्रसादेन हि मन्दबुद्धि-र्वाचा विलासांल्लभतेऽनवधान् ॥४॥
यदन्ति[3] जयन्ति भानुर्नानुमिर्मामितांश.[4],

---

१ श्री [illegible] प्र[illegible]० ।

२ [illegible] प्र[illegible]० ।

३ [illegible] प्र[illegible]० ।

४. [illegible] प्र[illegible]० ।

कमलतिकरबन्धु' कर्म्मसाक्षाप्रदेश:[1] ।
यदुदयमधिगम्य प्राप्तवुद्धिप्रकाशा,
निगमगदितमार्गे[2] साधवः सञ्चरन्ति ॥५॥
सकललोकरुजां दलनोद्यतौ, दिविषदा भिषजो करुणाकरौ ।
सकलवैद्यपथस्य च दर्शकौ, रचितन् नृपो हृदये दधे ॥६॥
धनवन्तरिं देववर नमामि, क्षीराब्धिसम्भूतमतीवरत्नम् ।
यन्नाममात्रेण समस्तरोगा-स्त्रस्यन्ति सिंहादिव मत्तनागाः ॥७॥
हारीतमग्निं भृगुंसुश्रुतौ च, भिषग्वरिष्ठं चरकं मुनीन्द्रम् ।
पाराशर[3] वैद्यवराननेकान्, वन्दामहे वन्दितपादपद्मान् ॥८॥
यदपि किमपि काव्यं कर्त्तुकामोऽल्पवुद्धिः,
क्षितिपतिमुकुट श्री राजसिंहायज्ञाऽहम् ।
तदपि समुपहासं नैव यास्यामि यस्मा-
न्मनसि जनक मेसा व्यासपादावलम्बः ॥९॥
श्री जैत्रसिंहः सुभरः परेषा-मुन्मूलने दत्तकरीन्द्रमुख्यः ।
सत्सूत्रबन्दिप्रवरादकेभ्यो, नित्यं प्रजापालनतत्परोऽभूत् ॥१०॥
तत्सूनुरत्यन्तगुणैः परीतः, कल्याणनामा कलिकल्पवृक्षः ।
यश्चक्रवर्ती जितसर्वभूपो[4], वीरो महात्मा मतिमान् बभूव ॥११॥
श्री राजसिंहः किल[5] तस्य सूनुः, संशोभते विक्रमभानुतुल्यः ।
सौभाग्यसिन्धुर्न परोऽस्ति दाता, यस्मात्प्रवीणोऽपि न चास्तिलोके ॥१२॥
इभ्रामनामा यवनाधिपोऽपि श्रीराजसिंहेन हुशेनपूर्वः ।
जितो वल्लीयानहितः कठोऽया., पलायित. स्वां परिहृत्य भूमिम् ॥१३॥
ततश्चार्वुदाख्यं गिरीन्द्रं गृहीत्वा, सुरत्राणनामावनीयं व्यजेष्टम् ।
शिरोहीपति पादप मानतं त-मथाऽतिष्टिपद् य। पुना राजसिंह ॥१४॥

---

१. कर्म्मसाक्षीग्रहेश: मनू० ।

२. मार्गे मनू० ।

३. परासर मनू० ।

४. भूपो मनू० ।

५ कलि मनू० ।

[illegible] लाभुपुरी बलेन ।
[illegible] विधाय, ता श्रीव्रमत्याजयदेकवीरः ॥१५॥
[illegible] काविल्लदेशे समरं विधाय ।
[illegible], श्री राजसिंहेन बभूव येन ॥१६॥
[illegible] नरेन्द्रौ विजित्य, हठात्संप्रबध्य प्रणीतौ स्वदेशम् ।
[illegible] सिन्धुभूपौ स्वकीयौ विधाप्य, समास्थापितौ राजसिंहेन भूपः ॥१७॥
[illegible] भारभूपः, सुतोजाममुख्याः क्षमामण्डलेशाः ।
[illegible], महामत्तदन्तावलान् सम्प्रदाय ॥१८॥
[illegible], महानर्घ्यमाणिक्यमुक्ताफलादीन् ।
[illegible] हि, भय सन्त्यजन्तीह चान्ये नरेन्द्राः ॥१९॥
[illegible], श्री लाभपुर्यां विहित तु येन ।
[illegible]-भूपेन चोकानगराधिपेन ॥२०॥
[illegible], प्रकृष्टपुण्यानि ततः कृतानि ।
[illegible], सौवर्णसत्कुण्डलदक्षिणाभिः[3] ॥२१॥
[illegible] येन तत्र, महार्द्धोदये पवणीशेन राज्ञा ।
[illegible][4], कृता राजसिंहाधिराजेन नूनम् ॥२२॥
[illegible], सर्वतीर्थवरतः शिरोमणौ ।
[illegible][6], वाडवाय विधिना समर्पितम् ॥२३॥
[illegible] पश्चाच्च कार्ष्णाजिनं,
दान तीर्थवरे महीपपतिना येनोज्जयिन्याह्वये ।
[illegible] परैः पार्थिभि-
[illegible] विना मुकृतिना कार्यं च येनाऽवनौ ॥२४॥

---

१ [illegible] ।

२ [illegible] ।

३. [illegible] ।

४. [illegible] ।

५. [illegible] ।

६. [illegible] ।

रत्नगर्भा हि तत्पत्नी, सूरसिंहमजीजनत् ।
यान्तु मूर्तिमती लक्ष्मी, केचिदाहुर्हरिप्रियाम् ॥२५॥
यदीयः सुत. सूर्यसिंहाभिधानो, महाबुद्धिमान् पुष्पबाणाभिराम. ।
महादीर्घबाहुः कुमारोऽपि दक्ष., स्वय शत्रुसघान् विजेतुं प्रवृत्तः ॥२६॥
कीर्तिर्मनोज्ञा महती विशुद्धा, विराजते यस्य भुवि प्रसिद्धा ।
वक्तुं न शक्या विबुधैर्हि धाष्टर्य-मादाय चोक्ता कियती मयाऽत्र ॥२७॥
महादेवनामार्यं वदान्य, सदा पण्डितव्रातसस्तुत्य बुद्धिम् ।
भिषक्शास्त्रवेत्तारमीय नमामि, मुदा स्वीयधर्मेरत सर्वपूज्यम् ॥२८॥
दृष्ट्वा जन्तूनामयेनाभिभूतान्, येसा नाम्नः पुत्र एवोपकर्तुं ।
गोपालाख्य सर्वभैषज्यवेत्ता, धीमन्नूनं ग्रन्थमेनं करोति ॥२९॥
नाम्नाऽयमेवाऽनुभवस्य सारो, येनैव साम्यासमल भवेच्च ।
कण्ठे कृतः कौस्तुभतुल्य एव, याचन्द्रतारं जयतात्[1] प्रकृष्टः ॥३०॥
दशाधिकारग्रन्थोऽयं, गदग्रन्थिनिवारकः ।
यस्य स्यात्तदभिज्ञान, स ना नून भिषग्वरः ॥३१॥
आसवस्तदनु तैल सर्पिषी, क्वाथकस्तदनु पाक एव च ।
धातुसग्रहमहाधिकारकः. सप्तमश्च सुजलाधिकारकः ॥३२॥
मांसाधिकारस्त्वथ चाष्टमः स्मृतो, दुग्धाधिकारो नवमः प्रकीर्तितः ।
भूमीन्द्रपक्वान्नमहाधिकारको, दशाधिकाराः क्रमतो निरूपिताः ॥३३॥

अन्तिम प्रशस्ति—

जीयाच्छ्रीनृपचक्रमस्तकचलद्भूपामणीनाङ्गण-
श्चञ्चोद्दपतरावितैर्हि सततं नीराजिनाह्नितद्वयः ।
कल्याणस्य महौघपुञ्जविलसत्कीर्तेः सुत सन्मतिः,
काव्यालङ्कृतिचञ्चुरः सनुज श्रीराजसिंह कृती ॥१॥
भारद्वाजसुगोत्रजः समभवत् कोकाह्वय. सद्द्विजः,
श्रीमत्पुष्करणाख्यनिर्मलतरज्ञाते. सदा मण्डनम् ।
टंसालीति विचक्षणैर्निगदितो लोके भिषक्पण्डितः,
श्रीधन्वन्तरितुल्य एव सुतरां स्वाचारनिष्ठः किल ॥२॥

---

१ नयातात् प्रभय० ।

तत्पुत्रस्तु मतेः कलाविरचने येसाभिधः सुन्दरः,

श्रीमद्भूपवरतिना समो द्विजवरः श्रीमद्वदान्याग्रणी ।

श्रीमत्कार्णिज्ञानधीः प्रभुरिति प्रोद्गीत एवाऽत्र यो,

नित्यं सत्कविभिर्जगत्यतिरितिश्चासीन्महाभाग्यवान् ॥३॥

तत्पुत्रेण महानुभावकृपया श्रीराजसिंहाज्ञया,

ग्रन्थोऽयं रचितः प्रकृष्टमतिना गोपालनाम्ना ततः ।

सोऽत्रानाद्युपकारकावनिपतं लोके मतीनामलं,

गुर्विं सुश्रुतवाग्भटादिविहितामादाय किञ्चित्किल ॥४॥

श्रीविक्रमार्काद् रसवासभूमिते, गतेऽब्देऽथ शकेन्द्रकालात् ।

भूतस्वराद्रीन्दुमितेऽथ माघ, कृते द्वितीया रविपुष्ययुक्ते ॥५॥

विष्कम्भयुक्ते करणे गराख्ये, श्रीमत्प्रभासे विमले सुतीर्थे ।

श्रीसोमनाथस्य समीपतो वै, ग्रन्थः किलाऽयं सुसमाप्तिमाप ॥६॥

इति श्रीबीकावंशे श्रीमन्नृपमुकुटमणिश्रीमहाराजाधिराज-

श्रीराजसिंहकारिते गोपालवैद्यकृतावनुभवसारनाम्नि

ग्रन्थे दशाधिकार समाप्तः ।

समाप्तश्चायं समाप्तः अनुभवसारः ।

सं० १७७१ फा० सु० १ ति० हाजीखान मध्ये । पं० युक्तिसुन्दरगणि लि० ॥

पत्रांक १२ पर –"१७७२ वर्षे चै० सु० १ लि० महिमाविजयेन । हाजीखाने ।

[श्री अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर क्रमांक ६३२७; पत्रांक १ से २१, हासिया फटा हुआ । धातु अधिकार में स्वर्णमारण के दो पद्य हैं, पश्चात् अपूर्ण है । अन्तिम दो पत्र पत्रांक रहित हैं ।]

